# अन्तःसलिला



प्रद्युम्ननाथ तिवारी "करुणेश"

# अन्तः सलिला

(गीत संग्रह)

प्रद्युम्ननाथ तिवारी 'करुणेश'




साहित्यकार संसद् प्रकाशन
साहित्यकार संसद् भवन
रसूलाबाद, (गंगातट), इलाहाबाद २११.००४

प्रकाशक : साहित्यकार संसद्
साहित्यकार संसद् भवन
रसूलाबाद (गंगातट),
इलाहाबाद
आवरण : शिवगोविन्द पाण्डेय
मुद्रक : पियरलेस ऑफसेट
१/१, बाई का बाग, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : सन् २०००
मूल्य : एक सौ पचास रुपये
१५०.०० (भारत में)
10 डॉलर (विदेशों में)



भावना मेरी तुम्हारे स्वर
तुम्हीं ने मुझको दिया अक्षर ।
कृति हमारी अमर हो जाए
दी महादेवी मुझे यह वर ।।

– प्रद्युम्ननाथ तिवारी "करुणेश"

श्री

श्री करुणेश कुमार को, काव्य परम कमनीय ।
जामें भक्ति सुभावना, है सुधार महनीय ।
विषय आधुनिक, है सुधर पढ़ें युवक चित लाय ।
अन्तः सलिला काव्य यह, सबके मन कूँ भाय ।।

संकीर्तन भवन
झूसी (प्रयाग)
माघी पूर्णिमा २०४३ वि०

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

विद्ययाऽमृतमश्नुते

प्रयाग महिला विद्यापीठ

# प्रयाग महिला विद्यापीठ

( महिला विश्वविद्यालय )

निवास :- दूरभाष २१२१
९७-सी, अशोकनगर

डा० महादेवी वर्मा
एम० ए०, साहित्य वाचस्पति
उप-कुलपति

१०६/१५३, विवेकानन्द मार्ग (हीवेट रोड),
इलाहाबाद

दिनांक ...-१...१९८७

श्री प्रद्युम्ननाथ तिवारी 'करुणेश' की कुछ कविताएं मैंने उनसे सुनीं तथा कुछ स्वयं पढ़ीं।

करुणेश जी आस्थावान भावुक कवि हैं। उनकी कविताएं सहज, सुबोध तथा आडम्बरहीन भाषा में विश्वास, आस्था तथा अनुभूति को व्यक्त करती हैं, वह पाठक के हृदय को छू लेने की क्षमता रखती हैं। छन्दबद्ध होने के कारण वे गेय भी हैं।

आज का कवि व्यंग्य, हास तथा आघात को मुक्तछन्द में कहने को ही कविता मानता है, किन्तु यह प्रवृत्ति उसे अपने सब स्वप्नों के भंग हो जाने के कारण मिली है। सर्वकालीन होने के लिए काव्य एक प्रकार का आत्मविश्वास भी हो जाता है और तब युग-युगान्तर तक मानव के स्पन्दन में स्थान पा लेता है।

श्री करुणेश जी का काव्य मर्मस्पर्शी तथा अनुभूतिप्रवण है। समय के प्रवाह में मंज कर उनकी रचनाओं में अधिक दीप्ति उत्पन्न हो सकेगी।

मैं कवि के भविष्य के लिए अपनी शुभकामनाएं अर्पित करती हूँ।

महादेवी

# आशीर्वाद

एक दिन अप्रैल, १९९८ की साँझ को चाय पीने के पश्चात सतसाही कविवर श्री प्रधुम्ननाथ तिवारी जी अपने "अन्तःसलिला" संग्रह की ८३ कविताएँ पढ़ने के लिए छोड़ गए। यद्यपि मैं ३० वर्ष से निरन्तर ध्यान साधना में अनेक गण्यमान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र के साधकों से घिरा हुआ हूँ और एक साथ ८३ कविताएँ पढ़ने का अवसर नहीं ही मिलेगा, फिर भी तिवारी जी की श्रद्धा और विश्वास के आगे मैं मूक ही रहा। जाते वक्त उन्होंने यही कहा कि आपका केवल आशीर्वाद लेने आया हूँ। मैंने तिवारी जी के दर्शन डॉ० रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी के साथ, डॉ० महादेवी वर्मा के निवास स्थान पर अनेक विदेशी भक्तों के साथ किए थे, अतः उनका परिचय महीयसी महादेवी जी के साथ मेरे हृदय पटल पर अंकित हो गया था। अब तक बना है।

एक दिन प्रथम जून की दोपहरी में मैंने कविता संग्रह की कविताओं को पढ़ा और पढ़ते ही मेरे हृदय को आनन्द की अनुपम अनुभूति हुई और कवि के हृदय का व उनकी साधना का दिग्दर्शन भी। 'करुणेश जी' की कविताओं में व्यथा की अभिव्यंजना बड़ी ही उत्कटता से अभिव्यंजित हुई है। इनकी कविताओं में पीड़ा, आत्मविश्वास, सहजता, सुबोधता, स्पष्टता और बेलागपना पूर्णता से प्रकट हुआ है। सभी कविताएँ एक साथ पढ़ने के साथ-साथ ध्यान व समाधि की स्थिति का बिना ध्यान किए अनुभव होने लगा। एकाग्रता जो हो गई।

इनकी कविताओं में एक ऐसे कवि का दर्शन हुआ जो इस जीवन की साधना का ही कवि नहीं बल्कि अनेक जीवन की साधनाओं से सर्जित कवि है। करुणेश अपने छन्दबद्ध गीतों से मेरी गेयता को स्पर्श कर गए और मैं गीत गुनगुनाने लगा। साथ ही आशीर्वाद का निर्झर स्वर भी फूट पड़ा।

विकास के पंथ पर बढ़ते हुए, हिन्दी भाषा की शुद्ध शब्दावली तथा उसके माधुर्य को अपनाकर "अन्तः सलिला" संग्रह में 'करुणेश जी' ने अपने

हृदय की मन्दाकिनी का प्रवाह प्रवाहित किया है। अपनी कविताओं द्वारा अपनी साधना को परम अध्यात्म सिंधु तक पहुँचाने का 'करुणेश जी' ने प्रयत्न किया है। और वे सफल हुए हैं।

उनके भावों को पढ़कर पाठक एक ऐसे महाकाश अथवा महासिंधु तक पहुँच जाता है जहाँ दिशाएँ ठहर जाती हैं, साथ ही पाठक धरती पर खड़ा रह कर अपनी, परिवार की, समाज की तथा विश्व के विश्वास की सभी अनुभूतियों का एक साथ दर्शन करता है। ''अन्तःसलिला'' की कविताएँ पढ़कर पाठक 'करुणेश' जी की काव्य-यात्रा के साथ-साथ चलकर सत-अनुभूति की यात्रा तथा स्वयं में एकत्व के उदय का दर्शन करेंगे, और श्री प्रद्युम्ननाथ तिवारी 'करुणेश' को बधाई देकर उत्साहित करेंगें। यद्यपि कविवर को स्वर्गीया महीयसी महादेवी का आशीर्वाद प्राप्त है फिर भी श्याम-गगन से परिचित स्वामी श्याम के हृदय से उनकी कृतियों के लिये, अनेक बधाई तथा प्रशस्ति व अनेक शुभाशीष। 'करुणेश जी' फलें तथा कीर्तिवान रहकर भारतीय गगन को अपनी वाणी से मुखरित करते रहें।

**स्वामी श्याम**

अंतर्राष्ट्रीय ध्यान संस्थान

देवभूमि कुल्लू, हिमालय १७५१०१

# प्रकाशकीय

साहित्यकार संसद् विविध साहित्यिक गतिविधियों के द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य की सम्यक समृद्धि में गतिशील है । साहित्यकारों की जयन्तियों, गंभीर विषयों पर चिन्तन-मनन हेतु गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों के आयोजन के साथ ही उत्कृष्ट सर्जनात्मक साहित्य के प्रकाशन की योजना के क्रियान्वयन में भी साहित्यकार संसद् अग्रगण्य है । प्रकाशन योजना के अन्तर्गत हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कवि, गीतकार श्री प्रद्युम्ननाथ तिवारी 'करुणेश' की काव्य कृति "अन्तःसलिला" का प्रकाशन करते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है । करुणेश की वाणी सम्पूर्ण भारत के विविध कवि सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में गूँजती रहती है, लेकिन बहुत से सहृदय गोष्ठियों में पहुँच नहीं पाते, सरस कविता तथा गीतों का आस्वादन अधिक से अधिक लोग कर सकें, इसी उद्देश्य से कविवर करुणेश के गीतों का मुद्रित रूप प्रस्तुत किया जा रहा है । मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह कृति जन साधारण के हृदय में रस का संचार करके वर्तमान हिन्दी कविता के प्रति उनकी पूर्व अवधारणा को तोड़ेगी और उन्हें साहित्य की सरसधारा से जोड़ेगी । कृति आपके हाथ में है । इसके भाव-सौन्दर्य की परख आप स्वयं करें ।

**डॉ० राम किशोर शर्मा**

*उपाध्यक्ष,*

साहित्यकार संसद्

# आत्मकथ्य

अपने जीवन के मरुथल के अन्तस्तल की अन्तःसलिला को आज अपने प्रिय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है। कोई कृतिकार जब अपनी प्रकृतिजन्या कृति को अपने जीवनकाल में सुधी पाठकों को समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त करता है तो वह क्षण, वह दिन, वह माह तथा वह वर्ष उसके जीवन का पर्याय बन जाता है। मेरी कविताएँ ही मेरा जीवन दर्शन हैं, मैंने अपनी कविताओं को अक्षरसः जीने का प्रयास किया है, यह मुझे पथ भ्रष्ट होने से बचाती हैं साथ ही सन्मार्ग की ओर उन्मुक्त करते हुए अपराजेय पौरुष भी प्रदान करती हैं। यों तो ऐसा कोई क्षण नहीं होता जब मेरी कविता मेरे साथ न रहती हो विशेषकर उन क्षणों में जब मेरे पास कोई नहीं होता! मात्र मैं होता हूँ और मेरी कविता, उस समय वह एक सच्चे मित्र की तरह, जीवन सहचरी की तरह तथा एक माँ की तरह जो अपने शिशु को एक पल के लिए भी अपने से दूर नहीं रखती और उसकी रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती है यही मेरी कविता की पृष्ठभूमि है। मुझे यह ज्ञात नहीं था कि मेरे उर-उपवन में वीजारोपित काव्य का कोई वीज एक दिन प्रष्फुटित होकर पुष्पित, पल्लवित होगा और फलदार वृक्ष के रूप में मुझे छाया प्रदान कर तृप्ति देगा।

मैंने काव्य रचना करते समय कभी भी मस्तिष्क पर बुद्धि रूपी हथौड़े का प्रहार नहीं किया, मेरे हृदय के उद्भाव जो सहज रूप में निःसृत हुए माँ वाणी ने उन्हें जो शब्द दिया उसे ज्यों का त्यों मैंने लिपिबद्ध कर दिया, मुझे शब्दों को ढूँढ़ने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी हाँ इतना अवश्य हुआ है कि मैं अपने गीतों को गुनगुनाता रहता हूँ उसी क्रम में कभी-कभी ऐसे शब्द अवतरित हो जाते हैं जिन्हें उपयुक्त स्थान पर स्थापित कर मन को प्रसन्नता होती है। यह मूल मंत्र मुझे प्रातः स्मरणीया मातृस्वरूपा महीयसी महादेवी जी से मिला था, वर्ष १९८६ में जब मैं अपने प्रकाश्यमान काव्य संग्रह ("अन्तःसलिला") के लिए उनका आशीर्वाद लेने गया, उन्हें पाण्डुलिपि प्रदान की तब उन्होंने पूछा कि संग्रह का नाम क्या है ? मैंने कहा माँ जी आपही कोई नाम निर्धारित कर दें, तत्काल बोल पड़ीं नहीं, तुमने कविता लिखी है इसमें तुम्हारे भाव हैं तुम्हीं इसका नाम सोचो, घर जाओ विचार करना नाम मिल जायेगा, बोलीं एक बात और कहनी

है तुमसे कभी भी अपनी कविता का संसोधन किसी से मत कराना वह चाहे कितना भी बड़ा कवि, साहित्यकार अथवा विद्वान क्यों न हो, कवि जो लिखता है उसकी भावनाओं की गहराई तक कोई और नहीं पहुँच सकता इसलिए तुम अपने गीतों को लिखने के बाद गुनगुनाया करो स्वयमेव संसोधन एवं परिमार्जन होता रहेगा, मैंने उनका दिया हुआ यह मंत्र धारण किया जिससे मुझे सदैव सम्बल प्राप्त होता रहा।

मैंने उनकी आज्ञानुसार घर जाकर माँ वीणापाणि का ध्यान किया तत्क्षण ही अन्तःसलिला नाम की प्रतिध्वनि अनुगुंजित हुई, उसके बाद और भी पाँच सात नाम अपनी बुद्धि से सोचे, दूसरे दिन समस्त नामों को उनके सम्मुख प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने "अन्तःसलिला" नाम को अपनी स्वीकारोक्ति से अलंकृत किया और कहा तुम्हारी कविताओं के अनुरूप यही नाम उपयुक्त होगा, इससे पहले वे अपना आशिर्वचन प्रदान कर चुकी थीं जो "अन्तःसलिला" कृति में यथावत समादृत है। उस समय इक्यावन कविताओं की पाण्डुलिपि मेरे पास थी जिसमें गीत, ग़ज़ल, सानेट, प्रगीत तथा अन्य प्रकार की बहुमुखी रचनाएँ थीं।

प्रस्तुत काव्य संग्रह में उन रचनाओं में से कुछ रचनाएँ ही संग्रहित की गई हैं शेष रचनाएँ उसके बाद की है; इस काव्य संग्रह में गीतों का संकलन है। मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मेरे प्रकाश्यमान काव्य संग्रह की आंशिक पाण्डुलिपि को स्पर्श कर प्रातः स्मरणीय ब्रह्मलीन ब्रह्मर्षि श्री देवरहा बाबा ने अपना मौन आशीर्वाद प्रदान किया था, श्री संवत् २०४३ माघी पूर्णिमा (सन् १९८६) के दिन दूसरे ब्रह्मलीन संत पूज्यपाद् श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने भी अपने स्नेह एवं आशीर्वाद से इसे संपृक्त किया।

वर्ष १९९२ में मेरे भाग्य का पुनः अभ्युदय हुआ जब मैं स्वामी श्याम के दर्शनार्थ कुल्लू (हि०प्र०) गया "स्वामी श्याम अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान संस्थान कुल्लू" में उनके दर्शन हुए, इससे पहले वर्ष १९८६ में महादेवी जी के निवास पर स्वामी जी से परिचय हुआ था जिसकी सूत्रधार महादेवी जी थीं, वही स्मृति मेरे तथा स्वामी जी के मानस पटल पर अंकित थी। स्वामी जी के साथ आध्यात्मिक वार्ताओं के अतिरिक्त साहित्यिक वार्ताएँ तीन चार दिन तक लगातार हुईं, स्वामी जी एक महान् सिद्ध साधक (योगी) होने के साथ-साथ उच्चकोटि के कवि भी हैं ऐसा सुयोग विरल है, उनमें मुझे प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी का स्वरूप दिखाई पड़ा, वही वात्सल्य उनकी अलौकिक दिव्य आभा से प्रकट हो रहा था,

मेरे साथ मेरे अग्रज कवि गंगायतन महाकाव्य के रचयिता पं० राजाराम शुक्ल भी थे। मैंने कुल्लू मनाली की तपस्थली में जहाँ व्यास एवं पार्वती नदी का संगम होता है उस पवित्र स्थल पर स्वामी जी के समक्ष (जहाँ उनके अनेक विदेशी शिष्य जो भारतीय संस्कृति से ओत प्रोत हैं उनकी उपस्थिति में) यह संकल्प लिया था कि मैं उसी प्रकार के काव्य की रचना करूँगा जिसमें अध्यात्म और साहित्य का समन्वय हो, माँ वीणापाणि मेरे उस सत संकल्प की रक्षा कर रही है और भविष्य में भी करेगी ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। मैंने साहित्यिक मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया और न ही इसे कभी सहन किया, चाहे काव्य गोष्ठियों में हो अथवा राष्ट्रीय मंचों पर मैंने अमर्यादित आचरण तथा अश्लील कविताओं का डटकर विरोध किया है, जिसके साक्षी हैं श्रेष्ठतम गीतकार सर्वश्री डॉ० श्रीपाल सिंह 'क्षेम', सोम ठाकुर, माहेश्वर तिवारी, डॉ० कुँवर बेचैन, श्रीकृष्ण तिवारी आदि, इनके अतिरिक्त सुरेश उपाध्याय, अशोक चक्रधर तथा मदन पाण्डेय जैसे श्रेष्ठ व्यंगकारों ने भी समय-समय पर मेरे इस आचरण की प्रशंसा की है। मैं काव्य की किसी विद्या का विरोधी नहीं हूँ किसी भी विद्या में कविता लिखी गई हो यदि उसमें हृदय को स्पर्श करने की क्षमता है तो वह सही अर्थों में काव्य है अन्यथा उसे शिल्पों तथा बिम्बों से चाहे कितना भी अलंकृत कर दिया जाय यदि भावनाओं का आविर्भाव उसमें नहीं है तो वह कविता हृदय को स्पर्श नहीं कर सकती इस प्रकार की रचनाओं का मैं समर्थक नहीं हूँ यद्यपि शिल्प और बिम्ब काव्य के प्रमुख अलंकरण हैं यदि इन्हें भावनाओं की माला में संजो दिया जाय तो उस काव्यहार का सौंदर्य द्विगुण हो जाता है।

मुझे संतों, गुरुजनों एवं अग्रजों का अपार स्नेह एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ है इनके आशीर्वाद का कवच पहनकर मैं इतना सुरक्षित हूँ कि स्वप्न में भी असुरक्षा का भाव नहीं आता। आज भी जब कभी मैं नई रचना लिखता हूँ सर्व प्रथम अपने गुरुजनों को सुनाता हूँ और उन्हें संतुष्ट करने के पश्चात् ही गोष्ठियों एवं मंचों पर उसका वाचन करता हूँ। प्रयाग में जिनके स्नेह का मैं विशेष पात्र हूँ उनमें सर्वश्री परम श्रद्धेय डॉ० जगदीश गुप्त, गुरुवर्य डॉ० मोहन अवस्थी, अग्रज अमरनाथ श्रीवास्तव तथा डॉ० राजेन्द्र मिश्र प्रमुख हैं, सच्चे अर्थों में ये मेरे मार्ग दर्शक हैं, इनसे पहले मैं महादेवी जी का तथा डॉ० रामकुमार वर्मा का स्नेह पात्र रहा हूँ। महादेवी जी के स्पर्श ने तो मुझ जैसे साधारण पाषाण को पारस बना दिया, मुझे भली भाँति स्मरण है वह क्षण जब

उन्होंने महाप्रयाण से कुछ दिन पूर्व मुझसे कहा था "करुणेश" अब मेरे अवसान का समय आ गया है मैं चाहती हूँ कि साहित्य की अजस्र धारा प्रयाग में प्रवहमान रहे, यह कहते हुए उन्होंने "साहित्यकार संसद्" जैसी संस्था का दायित्व मुझे प्रदान किया था, यह मेरे लिए विश्व साहित्य के किसी भी पुरस्कार से बढ़कर है, इसकी रक्षा जीवन पर्यन्त करता रहूँ यही मेरे जीवन का सर्वोत्कृष्ट लक्ष होगा। परम श्रद्धेय डॉ० रामकुमार वर्मा के इन शब्दों से मैं अभिप्रेरित हुआ जब उन्होंने एक दिन अपने निवास पर मुझसे कहा तुम मूलरूप से कवि हो पत्रकारिता का मोह मत करो (मैं उस समय मैत्रेयी पत्रिका का सम्पादन कर रहा था) कहा महादेवी जी के बाद मैं परम्परा का निर्वाह कर रहा हूँ, आज के कवियों में यह सोच नहीं है तुममे यह प्रतिभा है इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम काव्य-सृजन में ही अपना ध्यान आकृष्ट रखो, उन्होंने उदाहरण दिया, बताया कि डॉ० धर्मवीर भारती को मैने पत्रकारिता में जाने से मना किया था पर वे नहीं माने और धर्मयुग पत्रिका का सम्पादन करने लगे इससे उन्हें ख्याति अवश्य मिली परन्तु उनका कवि कुण्ठित हो गया उसके बाद वे पूर्व की भाँति कविताएँ नहीं लिख सके। उपर्युक्त बातों को कहने का मेरा अभिप्राय यही है कि इन महान् रचनाकारों की सदाशयता का ही यह प्रतिफल है कि वर्तमान परिस्थितियों में भी मैंने मंचों से समझौता नहीं किया, मृग-मरीचिका के पीछे नहीं भागा, परिणाम स्वरूप मेरे सिद्धांत मेरे आचरण में परिवर्तित हुए, यह माँ पराम्बा की मुझ पर विशेष अनुकम्पा है उस आद्याशक्ति से झोली फैलाकर यही भिक्षा माँगता हूँ कि भविष्य में भी वह इसी प्रकार मेरे सिद्धांतों की रक्षा करती रहे।

अन्त में मैं अपने आत्मीयजनों के प्रति कृतज्ञता की औपचारिकता की अभिव्यक्ति के व्यामोह से विरत होकर सदैव नत मस्तक होने का भाव प्रकट करता हूँ, वे अपने हृदय की मंदाकिनी में मुझे निरन्तर स्नान कराते रहें यही मेरी कामना है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर उनके स्नेह का ऋण नहीं चुकाया जा सकता इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा है कि कम से कम इस जन्म में मैं उनका यह ऋण न चुका सकूँ तभी तो अगले जन्म में भी वे हमारे अपने होंगे।

इन्हीं कामनाओं के साथ !

**प्रद्युम्ननाथ तिवारी "करुणेश"**

# अनुक्रम

* * *

## वाणी वन्दना

(१)

गंगा जैसा तन, गंगाजल जैसा मन
नेत्र स्नेहिल सजल रूप सर्वथा विमल है ।
सिन्धु सी गंभीर, जिसमें धरा सी धीर
हरती जो जन पीर, चीर जिसका धवल है ।
विधि की दुलारी, सारे जग से जो न्यारी
जाकी छवि मनुहारी, बैठी आसन कमल है ।
ऐसी वीणापाणि की, सुवाणी सुनने के लिये
मन तो अनाड़ी, पर भावना प्रबल है ।।

(२)

दे दे थपकीली थाप, हरती जो मन ताप
थके शिशु को जो निज गोद में सुलाती है ।
सुन किलकारी, छोड़ हंस की सवारी
कविकुल महतारी, नंगे पाँव दौड़ी आती है ।
स्नेह छलकाती, कामधेनु सी रंभाती
कर आँचल हटाती सुत को सुधा पिलाती है ।
गीत बन जाती, कभी छन्द बन जाती, कभी
मृदु भावना का मकरंद बन जाती है ।

२३.१.९२

# स्वर दे

स्वर दे व्रह्मवादिनी स्वर दे ।

तार-तार को झंकृत कर दे
निज स्वर से जग गुंजित कर दे
जन-जन को आनन्दित कर दे
याचक को वर दे ।

करुणा की रसधार बहा दे
स्नेह-सरित में माँ नहला दे
जीवन के इस रिक्त-कलश में
सरस सुधा भर दे ।

श्वेत रंग में मैं रंग जाऊँ
हर पल तेरा ही गुण गाऊँ
स्नेह-सिक्त मधु-स्नात लेखनी
मनहर अक्षर दे ।

शब्द-सुमन भावों में गुथकर
किंजल्की माला बन जाएँ
जन्म-जन्म तक रहें सुवासित
गीत अमर कर दे ।।

१५.५.८६

## तुम्हारी ही धड़कन है

जीवन की हर श्वास तुम्हारी ही धड़कन है
शीतलता का भास तुम्हारा सुस्पंदन है ।

मेरे अन्तस का बड़वानल शान्त न होता
अन्तः सलिला सिंचित यदि न भ्रांत मन होता
आभासित प्रतिबिम्ब मेरा जीवन दर्शन है
जीवन की हर श्वास तुम्हारी ही धड़कन है ।

गंगा-यमुना की लहरों में अदृश-दृश्य है
भावांकित शब्दों में अंकित दिव्य दृश्य है
उभय दृश्य का होता रहता दिग्दर्शन है
जीवन की हर श्वास तुम्हारी ही धड़कन है ।

शब्द-शब्द तेरे कर-कमलों से गुथ गुथकर
हार बन गए अमित सुगंधित सुमन मनोहर
सुमनों का यह हार आज तुमको अर्पण है
जीवन की हर श्वास तुम्हारी ही धड़कन है ।।

७.९.८६

## शतबार नमन है

तुमने मुझको बहुत रुलाया
पर तुमको शतबार नमन है
खोकर कुछ हमने सब पाया
क्रंदन में ही सुस्पंदन है।
मैं तो एक अकिंचन था पर
जब से तुमने स्पर्श किया है
मेरी विषधर सी काया को
तुमने आज किया चन्दन है।
रूप-गंध-रस को सुख समझा
यह मेरा अविवेकी मन था
आत्म-तत्त्व को जब पहचाना
हुआ तुम्हारा सहज मिलन है।
बँधकर भी जो मुक्त रहा हो
जीवन के वांछित बन्धन से
तुमने उसको खूब दुलारा
यह कैसा स्नेहिल बन्धन है ?
सुन्दरतर से भी सुन्दरतम
यदि कुछ भी हमने देखा है
वे हैं केवल चरण तुम्हारे
नित उन चरणों को वन्दन है ।।

१.३.८५

## अग्नि परिक्षा

कैसी तेरी अग्नि परीक्षा ?

चलते-चलते पाँव थक गए
सजल नयन अविराम थक गए
नाम तुम्हारा रटते-रटते
कम्पित अधर ललाम थक गए

पर न थके संकल्प हमारे
अविरल करते रहे प्रतीक्षा ।

अब तेरा हठ चल न सकेगा
मुझ अबोध बालक के आगे
तेरे रहते टूट न जाएँ
इस झीनी चादर के धागे

कब आकर मस्तक चूमोगी
पूर्ण करोगी कब मम इच्छा ।

तुझपर रीझूँ, तुझपर रूठूँ
हर क्षण तेरा गुण गाऊँ मैं
तेरे आँचल के साए को
तजकर बता कहाँ जाऊँ मैं

कहलाता हूँ पुत्र तुम्हारा
औरों से क्यों माँगू भिक्षा ।। १.१.८६

## तीरथराज प्रयाग

तीरथराज प्रयाग तुम्हारा अभिनन्दन है
वत्स तुम्हारा नित्य तुम्हें करता वन्दन है ।
देव तुम्हारे चरणों में युग-पुरुष प्रवर्तक
स्रष्टा, द्रष्टा, द्वैत और अद्वैतऽनुवर्तक ।
शरणागत हो स्वयं नवल इतिहास बन गए
तिमिराच्छादित भू पर आज प्रकाश बन गए ।
बहे तुम्हारे अन्तस्तल में अन्तःसलिला
तृषित जनों को तृप्त करे यह गइया कपिला ।
जन-जन को आध्यात्मिक नव-चेतन का स्वर दो
विष-प्लावित काया को प्रभु अमृतमय कर दो ।
अक्षर-अक्षर आत्मसात करले जन-मानस
ये नव-निर्मित गीत सदा बरसें करुणा रस
जन-मानस के मानस-सर में, मधुरस भर दो
तीरथराज प्रयाग यही याचक को वर दो ।।

२५.२.८६

## निर्वाण दिवस

साई का निर्वाण दिवस है
अम्बर से झरता मधुरस है ।

दिव्यलोक में रहने वाला
मृत्युलोक वासी कहलाया
भारत की इस धरा भूमि पर
शिर्डी को निज धाम बनाया
जिस पावन धरती के रजकण में
अद्भुत चन्दन की खस है ।

मन्दिर का निर्माण किया जो
मस्ज़िद को भी मान दिया जो
हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई
जन-जन का कल्याण किया जो
जो भी उसके द्वारे आया
उसका दूर किया कल्मष है ।

अपना सब कुछ अर्पित करके
तन-मन-प्राण समर्पित करके
काम, क्रोध, मद, लोभ सभी को
भक्ति भाव से तर्पित करके
खाली झोली जो जाता है
उसको वह देता सर्वस है ।

अजर-अमर जो अविनाशी है
अब भी वह शिर्डीवासी है
यहीं प्रयाग अयोध्या भी है
और यहीं काबा-काशी है
इसकी पावनता को छूने को
आकुल मेरा अन्तस है ।।

१५.१०.९८

## साई के प्यारे

शिर्डी के साई के प्यारे
साईनाथ तुम जग से न्यारे
निज भक्तों के पालन कर्ता
तुम भक्तों के भक्त तुम्हारे ।

स्नेहिल सहज-स्वरूप तुम्हारा
वाणी में है नवरस धारा
करुणा संचित कोश लुटाकर
कष्टों से देते छुटकारा

सारा जग तुमपर न्योछावर
तुम शिर्डी वाले पर वारे ।

आज तुम्हारा जन्म-दिवस है
व्याकुल तन-मन-प्राण विवश है
कुछ पाने को, कुछ खोने को
जाने क्यों आकुल अन्तस है ?

दिव्य ज्ञान दो, दिव्य दृष्टि दो
भूलें हम लौकिक सुख सारे ।।

१५.१०.९८

## दीप शिखा

जब से स्नेह तुम्हारा पाया
मरुस्थल में शतदल खिल आया
अन्तः सलिला प्रकट हो गई
तुमने जब मधुरस छलकाया ।

अक्षर-अक्षर मंत्र हो गए
गीतों को अमरत्व मिल गया
मिलते ही अपनत्व तुम्हारा
जीवन को पूर्णत्व मिल गया
निज का बोध हुआ जब तुमने
रूप-रहस्य मुझे समझाया ।

मैं पाषाण हृदय था लेकिन
उस पर कमल उगाया तुमने
कागा को भी हंस बनाकर
मोती सतत चुगाया तुमने
मानसरोवर की लहरों में
अगणित बार मुझे नहलाया ।

पारस लोहे को छूदे तो
लोहा कंचन हो जाता है
सतत साधना करते-करते
जीव ब्रह्ममय हो जाता है
तुमने स्पर्श किया जब मुझको
तब मुझमें नव-चेतन आया।

औरों की तुम "दीपशिखा" हो
मेरे मन-मन्दिर की मूरत
लौकिक को जब किया अलौकिक
था वह सचमुच दिव्य मुहूरत
उस अभिजित मुहूर्त को पाकर
मुझमें सत्यम् शिवम् समाया।।

२९.३.९४

# कौन हो तुम ?

कौन हो तुम जो मेरे उर में बसे हो ?
पर न तुमको देख पाता है मेरा मन !
तुम सुगंधित कर रहे उर-वाटिका को
शब्द व्यंजित कर रहे शुक-सारिका को
कौन तुम जो भावनाओं में लसे हो ?
पर न तुमको व्यक्त कर पाता मेरा मन ।
हो तुम्ही मम वेदना के कुशल सर्जक
हो न पाया मैं तुम्हारा कभी अर्चक
कौन तुम जो मुक्त बाहों में कसे हो ?
पर न तुमको प्राप्त कर पाता मेरा मन ।
मैं न देखूँ तुम्हें पर तुम देखते हो
भूल जाता तुम्हें पर तुम टेरते हो
कौन तुम जो गरल पीकर भी हँसे हो ?
पर न तुमको लक्ष कर पाता मेरा मन ।
तुम्हीं विधि हो, तुम्हीं निधि हो, रिद्धि तुम हो
मुझ कृपण की साधना की सिद्धि तुम हो
तुम कमल हो स्नेह-पंकिल में फँसे हो
बन्द करलो कोश में मेरा मधुप-मन ।।

४.९.८६

## दीपक कौन जला जाता है ?

किस क्षण इस सूने मंदिर में,
दीपक कौन जला जाता है ?
किस क्षण वह इस सान्ध्य-गगन में,
तारों को बिखरा जाता है ?
वह द्रष्टा है, दृष्टि वही है,
वह स्रष्टा है, सृष्टि वही है,
जाने कब इस नन्दन-वन में,
चन्दन-वृक्ष उगा जाता है ?
ब्रह्म वही है, शक्ति वही है,
ज्ञान वही है, भक्ति वही है,
जाने कब इस पर्ण-कुटी में,
वह बनवासी आ जाता है ?
वह प्रेरक है, प्रकृति वही है,
राग-द्वेष से रहित वही है
जाने कब वह इस निधिवन में,
आकर रास रचा जाता है ?
वह कर्ता है, कर्म वही है,
मोक्ष वही है, धर्म वही है,
जाने कब वह इस निर्धन को
सारा विभव लुटा जाता है ?

निराकार, साकार वही है,
मंत्रों में ओंकार वही है
जाने कब इस मूरख मन को,
वेद मंत्र सिखला जाता है ?
मैं माया से मुक्त नहीं हूँ
उस प्रभु के उपयुक्त नहीं हूँ
फिर भी इस भटके राही को
मंज़िल तक पहुँचा जाता है ।।

१.११.८६

## मन श्याम के पास है

तन मेरे पास मन श्याम के पास है
इसलिए अपने संयम पे विश्वास है ।
दो हृदय उस जगह पर मिले हैं जहाँ
एक नदी पार्वती दूसरी व्यास है ।

एक संसार की जन्मदात्री बनी
एक ने विश्व को ज्ञान दर्शन दिया ।
हम भी उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे
निज साधना में अगर साध्य की प्यास है ।

विश्व कल्याण की कामनाएँ सँजो
एक दिन सिन्धु में बिन्दु मिल जाएगा ।
फिर पखारेगा माँ भारती के चरण
क्योंकि उसके ही चरणों का ये दास है ।

माँ पराम्बा स्वयं पुत्र की लेखनी
बन सृजन भी करेगी अमर काव्य का ।
यदि मेरी धारणा, ध्यान में ध्येय है
और आराधना का भी अभ्यास है ।।

६.७.९२

## शब्द सृजन करता हूँ

जिस कवि ने कविता को जीना सीखा है
उस कवि को मैं बारम्बार नमन करता हूँ ।
कविता तो जीवन की संजीवनी बटी है
जिसको पीकर मैं दुःख दर्द शमन करता हूँ ।
राग, द्वेष को मैंने कभी नहीं पाला है
फिर भी पीना पड़ा मुझे विष का प्याला है
कटु सच भी कह देता हूँ बिन भेद-भाव के
क्योंकि अमर्यादा मैं नहीं वहन करता हूँ ।
जो छल-युक्त प्रपंच काव्य की विधा चली है
मेरी संवेदना यहाँ तो नहीं पली है
मेरे सरल सहज उर की पुष्पित कलियों को
कोई कुचले ये मैं नहीं सहन करता हूँ ।
अमर-काव्य के कृतिकारों का अनुगामी मैं
हर मर्यादित स्वतंत्रता का हूँ स्वामी मैं
मेरे अन्तर्भाव न कुण्ठित हो जायें
इसीलिये वाणी से शब्द-सृजन करता हूँ ।।

१६.९.९८

# गीत की ध्वनि जब मचलती है

हृदय की बाँसुरी में गीत की ध्वनि जब मचलती है
तो अक्षय रसभरी स्रोतस्विनी वाणी निकलती है ।

सुदृढ़ संकल्प रथ पर साधना का सारथी बन
आधुनिक चंचल तुरंगों की दिशाओं को बदलती है ।

तभी तो गीत हैं मनमीत मेरे आप सबके भी
इन्हीं के स्वर मधुर सुनकर शिला हिम बन पिघलती है ।

जो अन्तर के सरोवर में निरन्तर डूबे उतराए
वही संवेदना अन्तस में बनकर गीत पलती है ।

न जाने कितने तूफानों ने गीतों को है झकझोरा
मगर इस कल्प-तरु पर इन हवाओं की न चलती है ।

अगम गतिमान गति है इसलिये चालीस वर्षों से
प्रगति पथपर बिछी बारूद भी इससे दहलती है ।

अनादिक काल से थे ये, अनागत काल तक होंगे
नई कविता प्रयोगादिक को फिर क्यों बात खलती है ?

महादेवी, निराला, पन्त की पावन त्रिवेणी में
आज भी गीत की वह ज्योति, चिर-कालीन जलती है ।।

२६.४.९३

## यह अनुभव होता है

नीरव प्राणों में निर्झर का कलरव होता है
कभी-कभी मेरे मन को यह अनुभव होता है ।
जग की पीड़ाएँ मिलकर जब करुणा बनती हैं
शाश्वत गीतों का लिखना तब संभव होता है ।

मेरा अपना नील-गगन है मेरा अपना सागर है
जग को आलोकित करता है जो वह ढाई आखर है ।
रत्नाकर से ही रत्नों का उद्भव होता है
कभी-कभी मेरे मन को यह अनुभव होता है ।

मेरे वीजारोपण का ही मेरा अपना कल्पवृक्ष है
मेरी अपनी जीवन यात्रा मेरा अपना अन्तरिक्ष है ।
मेरे कल्पद्रुम में, नव-तरु-पल्लव होता है
कभी-कभी मेरे मन को यह अनुभव होता है ।

सबकुछ मेरा अपना है कब इसका ज्ञान हुआ
नादब्रह्म का ब्रह्मनाद का जिस क्षण ध्यान हुआ ।
वह कब क्या दे दे कुछ नहीं असंभव होता है
कभी-कभी मेरे मन को यह अनुभव होता है ।।

१६.१२.९६

# तन-मन को चन्दन कर दो तुम

उर-उपवन का मलयानिल बन
तन-मन को चन्दन कर दो तुम ।
ओ मेरे अन्तःपुर वासी
मुझको वृन्दावन कर दो तुम ।

सबसे न्यारा, सबसे प्यारा
सुन्दरतम अपना निधिवन हो
जिसमें पारिजात मुस्काए
मुझको नन्दन-वन कर दो तुम ।

मैं लौकिक तुम परम अलौकिक
कैसे भौतिक सुख त्यागूँ मैं ।
सतत साधना हो सकती है
मुझको यदि निर्धन कर दो तुम ।

दीन सुदामा या शबरी सी
अभ्यंतर में प्रीति जगा दो
या फिर अपनी अनुकम्पा से
मुझको पंचानन कर दो तुम ।।

११.५.९८

## स्वयम्भू भी रहे हैं

स्वप्न को साकार करने के लिए
हम जी रहे हैं
गरल का हर घूँट हँस-हँस
हम अमिय सा पी रहे हैं।
सँजोकर हम दर्द सारे
जब नियति से भी न हारे
नियति ने राहें बदल दी
हम नियन्ता ही रहे हैं।
मानवी संवेदना का
बन सजग प्रहरी सदा से
स्नेह निर्मित सूत्र से हम
घाव अगणित सी रहे हैं।
मिला है वरदान शिव का
शक्ति का सम्बल मिला है
भारती का थाम आँचल
हम स्वयम्भू भी रहे हैं।।

२.६.९९

# झील के कमल

हमने जब गीत लिखे
हमने जब छन्द लिखे
हमने जब लिखी है ग़ज़ल
संवेदनशील हुए
हम मोतीझील हुए
नमन हुए झील के कमल ।

ममता के श्वेत चरण
हमने जब किये वरण
आँचल की छाँव मिली
विषयों का हुआ क्षरण
माँ ने अभिषेक किया
हंस सा विवेक दिया
क्षीर सदृश हुए हम धवल ।

गीतों का नन्दनवन
छन्दों का वृन्दावन
ग़ज़लों के गुलशन से
महक उठा घर-आँगन
खुशबू संदली मिली
आज कली-कली खिली
परम्पराएँ हुईं नवल ।। १०.५.९९

## कवि को क्या मिलता है ?

जीवन में कवि को क्या मिलता है
रिसते घावों को नित सिलता है ।

पर्वत से झरने जब झरते हैं
कितने संत्रास से गुजरते हैं
प्राणों का पर्त-पर्त छिलता है ।
जीवन में कवि को क्या मिलता है ?

शूलों का जंगल भी होता है
जंगल में मंगल भी होता है
काँटों में ही गुलाब खिलता है ।
जीवन में कवि को क्या मिलता है ?

पीड़ा जब बनती है अनकही
खुशियों से होती है बतकही
गाने को गीत अधर खुलता है ।
जीवन में कवि को क्या मिलता है ?

## वृन्दावन होता है

जब जब आँखें नम होती हैं
तब तब मन सावन होता है ।
निर्मल नीर छलक जायें तो
सावन मन पावन होता है ।।
आँसू बोल नहीं सकते पर
बिन बोले सब कह जाते हैं ।
दग्ध हृदय सहलाने वाला
कोई मन-भावन होता है ।।
पीड़ाओं का गरल घूँट जो
जीवन भर पीती रहती है ।
उस जननी का तरल हृदय ही
इतना सरसावन होता है ।।
अक्षय करुणा क्या होती है
यह माँ की ममता से पूछो ।
नयनों से आँचल तक जिसके
अविरल रस प्लावन होता है ।।
माँ सर्जक हैं, माँ सर्जन है
माँ पूजा हैं, माँ अर्चन है ।
जिस घर में यह मूल मंत्र हो
वह घर वृन्दावन होता है ।।

२.२.९१

## दीप मत जल

रे ! अचंचल दीप मत जल
जग न जाए प्रीति चंचल ।
मुझे जलने दे अगन में
प्रीति पलने दे छुवन में
दे न मुझको मीत सम्बल
बह न जाएँ अश्रु निर्मल ।
है करील निकुंज मेरा
साँवरे का जहाँ डेरा
पहिन कर वह चीर-वल्कल
कर न जाए श्याम से छल ।
कर्म से संतुष्ट हूँ मैं
स्वयं से भी तुष्ट हूँ मैं
तुम न समझो मुझे निर्बल
साधना होगी न निष्फल ।
दिया जिसने मुझे आश्रय
लिया कितना कठिन निर्णय
थाम मेरा दग्ध आँचल
रहा वह अविराम अविरल ।
उसी की सहगामिनी हूँ
मेघ वह मैं दामिनी हूँ
री ! व्यथा "करुणेश" की चल
करुण निश्छल हृदय में पल ।।

२६.११.८६

## कवि का चिरगाँव

भटक गए राहों से पाँव
भूल गए हम अपने गाँव
कहाँ गया वो बालापन
कहाँ गई कागज की नाव ।

भाई बहनों के सम्बन्ध
राखी के पावन अनुबन्ध
आधुनिक हुए इतने हम
तोड़े सब बन्धन के बन्ध

याद रहे नग्न आवरण
भूल गए आँचल की छाँव ।

कहाँ गया शर्मीलापन
सम्मोहक मादक यौवन
पूजा की थाल सजाए
बाट जोहती हुई दुल्हन

याद रहीं विष कन्याएँ
भूल गए देहरी की ठाँव ।

पग-पग जीवन में पाखण्ड
मानवता हुई खण्ड-खण्ड
कूटनीति के नए प्रयोग
बाँट रहे भारत भू-खण्ड

याद रहे दिल्ली के दाँव
भूल गए कवि का चिरगाँव ।

२४.३.९३

## क्यों मन अनमन रहता है ?

कभी-कभी जाने क्यों मन अनमन रहता है ?
नयनों में सावन पलकों में घन रहता है ।

लगता है इन आँखों से जग को न विलोकूँ
होता है जो होने दूँ क्यों रोकूँ टोकूँ
कभी-कभी चुप रहने का भी मन कहता है ।
कभी-कभी जाने क्यों मन अनमन रहता है ?

दर्पण की पहचान खो गई शीश महल में
संस्कृति भी खो गई पश्चिमी कोलाहल में
कभी-कभी रुख के विपरीत पवन बहता है ।
कभी-कभी जाने क्यों मन अनमन रहता है ?

सुसंस्कृति का क्षरण वरण अब अप संस्कृति का
ऐसे में क्या होगा सोचो तुलसी कृति का
कभी-कभी कवि का भी अन्तर्मन दहता है ।
कभी-कभी जाने क्यों मन अनमन रहता है ?

आखिर इन पीड़ाओं का भी अन्त कहीं है
जीवन के पतझड़ में प्राण वसन्त कहीं है
कभी-कभी यह पीड़ा भी मधुवन सहता है ।
कभी-कभी जाने क्यों मन अनमन रहता है ?

सहसा कोई शक्ति कवच बनकर आती है
शब्द-वेधनी तीर वत्स को दे जाती है
उन्मन-मन माँ भारति का आँचल गहता है ।
कभी-कभी जाने क्यों मन अनमन रहता है ?

१६.१०.९८

# ज़िन्दगी

कौन कहता है, है ये भली ज़िन्दगी ?
कंटकों में सुमन बन पली ज़िन्दगी ।

हार बन जब किसी के गले में पड़ी
प्राण की पंखुड़ी-पंखुड़ी तक झड़ी
पाँव ने रौंद दी मखमली ज़िन्दगी ।
कौन कहता है, है ये भली ज़िन्दगी ?

एक क्षण देव के शीश पर ये चढ़ी
मूर्ति ने क्या कभी भावना भी पढ़ी ?
अर्चकों को उसी क्षण खली ज़िन्दगी ।
कौन कहता है, है ये भली ज़िन्दगी ?

हर मृतक का ये श्रृंगार करती रही
मृत्यु की सेज पर भी सँवरती रही
काल की संगिनी बन चली ज़िन्दगी ।
कौन कहता है, है ये भली ज़िन्दगी ?

जन्म से मृत्यु तक गंध देती रही
जब थी गुलशन में सबकी चहेती रही
बागबाँ से गई ये छली ज़िन्दगी ।
कौन कहता है, है ये भली ज़िन्दगी ?

१५.२.९६

# हम बार-बार टूटे

जब हृदय हुआ आहत तो
अधरों से स्वर फूटे
जुड़ने की अभिलाषा में
हम बार-बार टूटे ।

अपनों को अपना समझा
गैरों को गैर न माना
खुद छला गया लेकिन मैं
छलने की कला न जाना
जब घाव हुए गहरे तो
हम गीतामृत रस घूँटे ।

तप-तप कर स्वर्ण बना हूँ
जीवन संस्मरण बना हूँ
समुपेक्षित होकर भी मैं
अपराजित कर्ण बना हूँ
मुझपर अभिशापों के कितने
अस्त्र-शस्त्र छूटे ।

मैंने जीवन को जाना
निज को मैंने पहचाना
मैं इन्द्रजाल को तोड़
बना कबिरा का ताना-बाना
मैं शाश्वत अक्षय कोश
मुझे कोई कितना लूटे ।।

१.८.९८

# एकाकीपन

शाम हुए जब सूरज ढलता है
एकाकीपन कितना खलता है ।

धीरे-धीरे संध्या आती है
भीनी-भीनी खुशबू लाती है
रजनीगंधा से शशि मिलता है
एकाकीपन कितना खलता है ।

सावन में जब मतवारे बादल
निशा नमन में रचते हैं काजल
उपवन में जब मोर थिरकता है
एकाकीपन कितना खलता है ।

शरद पूर्णिमा की शीतलता
चकवी चकवे की विह्वलता
उभय प्रणय जब कलरव करता है
एकाकीपन कितना खलता है ।

चन्दन-चन्दन वासंती का मन
तरु-पल्लव को देता नव-जीवन
पिक-स्वर से जब मधुरस झरता है
एकाकीपन कितना खलता है ।

३.६.९७

# ये कैसी प्रीति की तपन ?

ये कैसी प्रीति की तपन ?
शीतलता हो गई सपन
मधुरस शशि बाँटने चला
तभी हुआ राहु आगमन ।
रजनीगंधा से पूछो
उस पर क्या बीत रही है
कली अभी खिली भी न थी
प्रियतम को लग गया ग्रहन ।
मेंहदी के रंग से अभी
गदराया था जो यौवन
जाने क्या भूल हो गई
फिसल गए कर से कंगन ।
स्वप्न चूर-चूर हो गए
चटक गया मन का दर्पण
अँजुरी भर आँगन की धूप
झुलस गया सारा जीवन ।
ओ ! मेरे अनुरागी मन
मत हो तू इस तरह उदास
सपनों के सौदागर की
नियति यही, यही आचरण ।।

७.६.९३

# देह नम हो जायेगी

गीत गाने दो मुझे, प्रिय
वेदना थम जायेगी ।
गुनगुनाने दो मुझे
कुछ पीर कम हो जायेगी ।
दर्द का एहसास ही, है
मानवी संवेदना
इस मधुर संवेदना की
क्यों करें अवहेलना
पास आने दो इसे
इस ढाँव पर रम जायेगी ।
अश्रु पुलकित लोचनों से
नीर बहने दो अनवरत
वे अगर रुक जायेंगे तो
टूट जायेगा मेरा व्रत
छलछलाने दो नयन को
देह नम हो जायेगी ।
कामना की डोर, निज
परमेश को कर दो समर्पित
साधना इस छोर से
उस छोर तक मत हो प्रकम्पित
प्रण निभाने दो मुझे
हर व्यथा शम हो जायेगी ।। २२.२.८९

## पीर हरो तो जानें ?

तन की पीर कोई हर लेगा
मन की पीर हरो तो जानें
मधु का पान कोई कर लेगा
पीकर गरल जियो तो जानें ?

औरों को छलना मुश्किल क्या
खुद को काश छलो तो जानें
नेह से दीप जलाने वालो
बनकर शलभ जलो तो जानें ?

कविता को तुम वाद न देकर
खुद अपवाद बनो तो जानें
शब्द-शिल्प गढ़ने वालो यदि
अनहद नाद गढ़ो तो जानें ?

कवि की करुण कहानी पढ़कर
नयन तुम्हारे भर आयेंगे
पर तुमने जो घाव दिये हैं
उनको आज भरो तो जानें ?

३.२.८९

# अन्तर्द्वन्द

बन्द खिड़कियाँ हैं दरवाजे भी बन्द
अन्दर भी द्वन्द है, बाहर भी द्वन्द ।

अन्तर की व्यथा कथा सुनता है कौन
औरों की कौन कहे अपने हैं मौन
अब तो प्रिय छन्द भी नहीं हैं स्वच्छन्द
अन्दर भी द्वन्द है, बाहर भी द्वन्द ।

सूरज की किरणें अब पास नहीं आती हैं
चन्दा की ज्योति कहीं दूर चली जाती है
मावसी निशा से यह कैसा अनुबन्ध ?
अन्दर भी द्वन्द है, बाहर भी द्वन्द ।

आशा का एक दीप अन्तस में जलता है
है कोई दिव्य-ज्योति प्राण जहाँ पलता है
लगता है यहीं कहीं है परमानन्द
अन्दर भी द्वन्द है, बाहर भी द्वन्द ।।

## सान्त्वना का भ्रम मिला

न खुशी मिली न तो गम मिला
जो भी मिला वो कम मिला

एहसास की ये ज़िन्दगी
कितनी मुदित, कितनी मलिन
विश्वास की इस परिधि में
न प्रभा मिली, न तो तम मिला।

सम्बन्ध में अनुबन्ध क्या ?
अनुबन्धमय सम्बन्ध क्या ?
अनुरक्ति के व्यामोह में
न विरति मिली, न अहम् मिला।

आसक्ति की इस अवनि पर
हर व्यक्ति को कुछ चाहिये
प्रत्येक मर्माहत हृदय को
सान्त्वना का भ्रम मिला ।।

१८.१०.९१

# छल लिया तुमने कलाधर

आज जननी को समर्पित हैं
रुदन के स्वर, व्यथित अम्बर
बिलखते लोचनों से झर रहे निर्झर ।
भावना के गीत भी लगते असुंदर
पार अब जो कर चुके सातों समुंदर
डूबने का भय उन्हें कुछ भी न था पर
स्वयं से ही छल गए अनुगीत सस्वर
विष वमन कर, काल-कवल-कराल बनकर
विश्व सारा हो गया है सर्प मणिधर ।
साधना के दीप भी जलने न पाए
वेदना को मीत थे हमने बनाए
आज कविते-कामिनी सहगामिनी बन,
क्यों ? शुभे ! तुमने सुधा में विष मिलाए
राहु बनकर, तुम प्रभाकर की प्रभा को,
कलंकित कर, छद्म परिकर, छल लिया तुमने कलाधर ।।

४.१.८५

# सुमन फिर कैसे खिलेंगे ?

आज उपवन भी विजन सा लग रहा है
तुम बताओ सुमन फिर कैसे खिलेंगे ?
बन्द पंखुड़ियाँ ही जब मुरझा गई हों
तुम बताओ मधुप क्या गुंजन करेंगे ?
दीप भी बुझने लगे परिणय निशा के
तुम बताओ शलभ क्या जलते रहेंगे ?
करुण-क्रंदन शब्द जब कुण्ठित हुए हों
भावना के गीत फिर कैसे पढ़ेंगे ?
शेष कहने को रहा निस्सार जीवन
सलिल क्या "करुणेश" दृग झरते रहेंगे ?

५.५.८५

## मत इतना चंचल बन

रे ! मन मत इतना चंचल बन
दुनिया जितनी रंग-विरंगी
अन्दर से उतनी ही नंगी
चाल चले प्रति-पल बहुरंगी
धोखा देती बन निज अंगी
तुम इस पर विश्वास न करना
करे निछावर चाहे तन-मन ।
यह तेरे जैसे भावुक को
निज स्वरूप से मोहित करले
तुझे स्वयं की व्यथा सुनाकर
सजल नयन को पुलकित कर दे
इस छलना के नागपाश में
कभी न आना तुम बन्दी बन ।
इसकी माया कितनी न्यारी
जन-जन को लगती है प्यारी
माया के उपवन में देखो
महक रही कैसी फुलवारी
इस सुगंध में खो मत जाना
मत करना इससे अनुबन्धन ।।

२३.७.८५

# शूलों से प्यार

मेरे चिर संचित गीतों ने
शूलों से ही प्यार किया है
कुत्सित जग से त्रसित मनुज को
जीने का अधिकार दिया है ।
जग ने किया उपेक्षित जिनको
उसको अपना मीत बनाया
ममता के प्यासे अधरों को
प्रति पल करुणा से नहलाया
इस जग को ठुकराया जिसने
उसे नया संसार दिया है ।
बाधाओं को दूर हटाकर
जिसने अपना मार्ग बनाया
चाहे कितनी विपदाएँ हों
कभी न पीछे कदम हटाया
ऐसे दृढ़-संकल्प व्यक्ति को
फूलों का उपहार दिया है ।
हम न रहेंगे पर इस जग में
गीत हमारे अमर रहेंगे
मेरे अन्तर से नव-निर्मित
नव-युग का निर्माण करेंगे
युग-प्रवर्त बन जन-मानस को
भावों का भण्डार दिया है ।।

३०.१२.८५

# गीतों ने लिखा उपन्यास

मिला मुझे गीतों का सम्बल
जब-जब भी हुआ मन उदास ।
उन झंझावातों ने, विपुल जल-प्रपातों ने
करना चाहा जब आघात
मिला मुझे ममता का आँचल
जीवन से हुआ जब निराश ।
तन चुभते शूलों ने, कटीले बबूलों ने
जब-जब भी बींधा मन-प्राण
मिला मुझे कवच और कुण्डल
मृत्यु का हुआ जब आभास ।
यादों का गंगातट, मन-भावन वह पनघट
घाट हुआ जब-जब श्मशान
मिला मुझे मंत्रों का प्रतिफल
"दीपशिखा" का हुआ प्रकाश ।
पग-पग विपदाओं ने, घोर निराशाओं ने
जब-जब भी किया आह्वान
मिला मुझे ऐसा अन्तस्तल
गीतों ने लिखा उपन्यास ।।

२०.११.८७

## मेरे गीतों के मधु-स्वर

हर न सके यदि पीड़ा जग की
मेरे गीतों के मधु-स्वर
फिर क्या मैं कवि कहलाऊँगा
विगलित होंगे जब अक्षर ।
करुणा संजित कोश लुटाकर
सब को नव-उद्‌गार दिया
हमने पतझड़ को किसलय दे
नव-तरु का श्रृंगार किया
कर न सका यदि नव-उपवन को
गुंजित मेरा मन-मधुकर
फिर क्या मैं ध्वनि दे पाऊँगा
टूटेंगे लय के मृदु-स्वर ।
हमने चुन-चुन फूल सँजोए
ममता की अनुपम डाली में
कुछ मुस्काए, कुछ मुरझाए
रही कमी कुछ बनमाली में
दे न सके परिपूर्ण गंध यदि
मंदिर-मंदिर सुरभि सुघर
बन गुलाब क्या खिल पाऊँगा
सूखे होंगे जब तरुवर ।

मानवता के स्नेह-सिंधु में
सबको अमृत पान कराया
पीकर स्वयं गरल जीवन में
जीवन को जीवंत बनाया
उसकी अग्नि परीक्षा में जब
कुंदन हो जाऊँगा तपकर
इस जग को कुछ दे पाऊँगा
हो जाऊँगा अजर-अमर ।।

२१.८.८६

## उषा के चितेरे हो

परिचित होकर भी यदि कोई परिचय पूछे
समझो तुम प्रीति ही बिखेरे हो
निशा नहीं उषा के चितेरे हो ।

विषम परिस्थितियों में भी सम बनकर रहना
मौसम के वार बार-बार प्यार से सहना
शोषित होकर भी यदि शक्ति से सुपोषित हो
समझो तुम वज्र के थपेरे हो ।

संचय की वस्तु आज संशय से ग्रस्त हुई
मूल भावना भी विद्वेषों से त्रस्त हुई
अरि से दर्पित हो यदि अरि-दल में चर्चित हो
समझो तुम प्रभा-पुंज घेरे हो ।

कहीं तो विसंगतियों में भी गति होती है
वह गति ही जीवन के सत्य को संजोती है
निःसृत होकर भी यदि ध्रुव सदृश चमत्कृत हो
किसी ब्रह्मऋषि के तुम चेरे हो ।।

२१.९.९२

# एक शब्द मुझे भी मिला

यादों के शब्दकोश में
एक शब्द मुझे भी मिला
मेरे संपूर्ण काव्य के
उपवन में पुष्प बन खिला।
जग ने जब प्रीति तोड़ दी
हमने जग-रीति छोड़ दी
हमें नहीं किसी से गिला
एक शब्द मुझे भी मिला।
पग-पग पर अग्नि परीक्षा
प्रतिद्वन्दी क्रूर समीक्षा
पल-पल संघर्ष में पला
एक शब्द मुझे भी मिला।
विष पीकर भी जीवित हूँ
कैसे कह दूँ पीड़ित हूँ
जीने की यही है कला
एक शब्द मुझे भी मिला।
रवि सा तन, पर शशि सा मन
ऐसा है मेरा जीवन
राहु ने जिसे सदा छला
एक शब्द मुझे भी मिला।।

२२.२.८९

## मन-मीत

ओ मेरे मन-मीत बता दो कब तक यों परिहास करोगे
जीवन के अनुगीत बता दो क्या मेरा इतिहास बनोगे ?

मेरे पास सिवा क्रन्दन के और तुम्हें कुछ मिल न सकेगा
अन्तरतम की गहराई के गुलशन में गुल खिल न सकेगा
तुम निर्जनता के निधिवन की शुष्ककली महका न सकोगे ।

जग ने ही उपहास किया जब, तुमसे क्या उम्मीद करूँ मैं ?
गागर में सागर को भर लूँ या सागर का नीर पिऊँ मैं
व्यथित हृदय के अन्तस्तल की प्रिय कैसे तुम पीर हरोगे ?

अगर तुम्हें प्रिय साथ हमारा, दुर्दिन में भी साथ निभाना
शत्-पथ से जग भले डिगाए तुम मेरा विश्वास बढ़ाना
नेह हीन इस जीवन-घट में, तुम अपना चिर नेह भरोगे ।।

२७.७.८५

## न हमसे जुदा हो

मुझे दर्द दे दो खुशी मेरी ले लो
मगर शर्त ये है न मुझसे जुदा हो ।
इन आखों में आँसू न देखें कभी हम
गुलाबों पे मनहर हँसी आ रही हो
गगन पर थिरकते रहें चाँद तारे
इशारों पे काली घटा छा रही हो
मुझे तिमिर दे दो, प्रभा मेरी ले लो,
मगर शर्त ये है न मुझसे जुदा हो ।
तुझे भूल जाऊँ ये मुमकिन नहीं है
तेरे पास आऊँ ये मुश्किल नहीं है
मगर तुम कहाँ हो पता तो बताओ
जहाँ तुम नहीं कोई महफ़िल नहीं है
मुझे मौन दे दो, मेरे गीत ले लो
मगर शर्त ये है न मुझसे जुदा हो ।
कभी यदि बिछड़कर, मुझे भूल जाओ
न हम याद आएँ, न तुम याद आओ
मगर सोच लेना जुदाई से पहले
कहीं यह न हो गम के आँसू बहाओ
मुझे शूल दे दो, मेरे फूल ले लो,
मगर शर्त ये है न मुझसे जुदा हो ।।

२३.७.८५

# इसलिये तीर भी हैं तरल

गीत गाऊँ या गाऊँ ग़ज़ल
नेत्र होंगे हमारे सजल
भावना के सरोवर में भी
कुछ मिलेंगे झुलसते कमल ।

जिस हृदय में हो संवेदना
अश्रु बन स्नेह छलके जहाँ
उस व्यथा की कथा क्या लिखूँ
वह व्यथा है स्वयं गंगाजल ।

दो किनारों की सौहार्दता
है बँधी नीर के नेह में
नीर की आर्द्रता है विपुल
इसलिये तीर भी हैं तरल ।।

२.८.९२

# युगल-कर

शब्द तुम्हारे गीत हमारे
जीवन का आधार बनेंगे
नृत्य तुम्हारे, भाव हमारे
रुनझुन की झंकार करेंगे ।
जैसे दो नदियों का संगम
जन-जन को करता हृदयंगम
धो देता है जो अन्तरतम
सचमुच है वह कितना अनुपम
गंध हमारी पुष्प तुम्हारे
मधुवन का सत्कार करेंगे ।
कभी शूलपथ पर कुसमय में
यदि तुमको चलना पड़ जाये
मावस की घनघोर निशा में
जीवन में बसना पड़ जाये
कलश तुम्हारे, दीप हमारे
रजनी का श्रृंगार करेंगे ।
जीवन की इन भूल-भुलैयों में
न कहीं दोनों खो जायें
इससे पहले युगल-करों से
सुरतरु का अंकुर बो जायें
जन-मानस के हृदय-कुंज में
मुकुलित हो कचनार खिलेंगे ।।

२०.७.८५

## खो गया है मीत

खो गया है मीत मेरा गीत अब किसको सुनाऊँ
रह गयी अधबनी मूरति, शीश अब किसको झुकाऊँ।

स्वर हमारे कर्ण कुहरों तक प्रतिध्वनित हो उठे हैं
वेदना के करुण क्रंदन शब्द कुण्ठित हो चुके हैं
भावना की भावभीनी भेंट अब किसको चढ़ाऊँ
खो गया है मीत मेरा, गीत अब किसको सुनाऊँ।

जन्म से अब तक हृदय में दर्द को हमने सँजोया
अश्रु पुलकित लोचनों से, भावनाओं को भिगोया
हो गए वे स्वप्न सारे, पर उन्हें कैसे भुलाऊँ
खो गया है मीत मेरा, गीत अब किसको सुनाऊँ।

एक पल को भी अगर अपना बना लेता कोई
मुक्त गद्गद कण्ठ से मधु-स्वर सुना देता कोई
स्वार्थमय है विश्व सारा फिर किसे अपना बनाऊँ
खो गया है मीत मेरा, गीत अब किसको सुनाऊँ।

२७.७.८४

# अनहोनी हो गई

छुवनों के कंगन की ज्योति मलिन हो गई
अलसाई पलकों में नींद कहीं खो गई
पर सोनिल यादों के चित्र अभी अंकित हैं
पथराई आँखों में प्रीति कहीं सो गई ।।

बैरिन पुरवइया ने जब-जब ली अंगड़ाई
यादों की विभावरी मन ही मन मुस्काई
हाँ उषा रुपहली ने पीठ थपथपाई पर
संदली हथेली पर सरसों भी बो गई

कर्पूरी गंध-युक्त रेशम की चूनरी
जाने कब छू गई कौन सी छछूँदरी
चन्दन सी काया भी विष-दंशित हुई आज
होनी तो हुई नहीं अनहोनी हो गई ।।

१०.६.८७

## अनछुई उँगुलियाँ

अनछुई उँगुलियों की मौन गुदगुदाहटें
प्राणों के पोर-पोर ऐसे सहला गईं ।
गुमसुम पैजनियों की शर्मीली आहटें
विरही अनमन-मन को जैसे बहला गईं ।
संचालित यंत्रों से मुखरित हो उठे छन्द
सांकेतिक शब्दों की लड़ियों में गुथे बन्द
आह्लादित बिम्बों की मधुर मुस्कुराहटें
सघन हिम शिलाओं को सहसा पिघला गईं ।
मरुथल के अन्तस्तल की यह अन्तःसलिला
जब कभी कुरेदा तो अगमागम नीर मिला
उफनाई सरिता की अलख छटपटाहटें
आलिंगी सागर की बाहों में आ गईं ।।

१०.६.८७

## कहाँ दीप ले तुमको ढूँढ़ूँ

कहाँ दीप ले तुमको ढूँढ़ूँ जीवन के अँधियारों में
कहाँ छिपे तुम रास रचाकर कुंजों की गलियारों में ।

किससे पूछूँ पता तुम्हारा, किससे मैं संदेश कहूँ
किसको अपनी व्यथा सुनाऊँ, किससे मन का भेद कहूँ
लगता है तुम कहीं छिप गए, जाकर चाँद सितारों में ।

किसको अपना मीत कहूँ मैं, किस पर अब विश्वास करूँ
जब सारा जग ही धोखा हो, निज छाया से क्यों न डरूँ
कहाँ छिपे तुम यादें बनकर, गुम्बद की मीनारों में ।

कैसे प्रीति निभाऊँ तुम संग, कैसे तेरा मीत बनूँ
जब तक मन की बजे न वंशी, कैसे तेरा गीत सुनूँ
कहाँ छिपे तुम आँसू बनकर, सजल नयन कजरारों में ।।

१०.६.८५

# मेरा जीवन धन ले लो

तुम मेरा जीवन-धन ले लो
पर मुझसे अनुबन्ध न तोड़ो ।
यों तो कहने को दुनिया में
बहुत चहेते हैं अपने
पर तुम जैसा और न कोई
देखूँ मैं जिसके सपने
तुम मेरा सुस्पंदन ले लो
औरों से सम्बन्ध न जोड़ो ।
सजल नयन में अश्रु संजोए
किसको अपनी व्यथा सुनाऊँ
गरल कलश से कण्ठ भिगोए
मुख से भी कुछ बोल न पाऊँ
तुम मेरा तन-मन-धन ले लो
पर मुझको स्वच्छन्द न छोड़ो ।
जीवन कितना भी नीरस हो
बहका-बहका जन-मानस हो
भाव भरा यदि गीत सरस हो
अधरों से झरता मधुरस हो
तुम मेरा चिर-जीवन ले लो
पर यह घट-मकरंद न फोड़ो ।।

१०.५.८५

## कितने दीप जलाए

तेरे पूजन की वेदी पर
हमने कितने दीप जलाए
धूप, दीप, नैवेद्य आरती
कितने मोहन भोग लगाए
करता रहा प्रतीक्षा तेरी
पर तुम मेरे मीत न आए ।
अब तो बुझने लगे दीप भी
तिमिर छा रहा है जीवन में
जीवन कलिका सूख गई है
कैसे जाएँ हम मधुवन में
मेरा अन्तर्मन जो छूले
प्रिय तुमने वह गीत न गाए ।
बीते दिवस मास फिर बीते
अब तो वर्षों बीत गए हैं
भुला न पाए वह गठबन्धन
लगते मंगलगीत नए हैं
विरह व्यथा से व्याकुल मन को
अब कोई संगीत न भाए ।

प्रिय क्यों भूल गए तुम मुझको
कारण कुछ भी ज्ञात नहीं है
हमने जो संघर्ष किए हैं
वह कोई अज्ञात नहीं है
गठबन्धन तो तोड़ दिए पर
भव-बन्धन तुम तोड़ न पाए ।।

१३.१.८६

# प्यार हारा नहीं

टूटकर जो जुड़े हैं वही ज़िन्दगी
ऐसे जीवन को तुमने सँवारा नहीं ।
लौटकर आ सके जो उसी मोड़पर
उस मुसाफिर को तुमने पुकारा नहीं ।।

भूलकर जो तुम्हें याद आते रहे
उनको मानस-पटल पर उतारा नहीं ।
भूलने की क्रिया तो नहीं भूल है
भूलकर भूल तुमने सुधारा नहीं ।

नेह की राह पर शूल भी थे मगर
उन करीलों को तुमने दुलारा नहीं।
वेदना के क्षणों की कुछ अनुभूतियाँ
ज़िन्दगी में हैं होतीं दुबारा नहीं।।

खारे सागर में ही चौदहों रत्न हैं
डूबकर तुमने उसमें निहारा नहीं
मन-हृदय से समर्पण करो तो सही
हारकर भी कभी प्यार हारा नहीं।।

३.१.९५

# तुम्हारे लिए

कभी जब तुम्हें ऐसा एहसास हो
अपनों से मिलने की जब प्यास हो
अनायास छल-युक्त संन्यास का
तुम्हारे हृदय को जब आभास हो
तब तुम मेरा उर रिझाना शुभे!
तुम्हें याद करता हूँ, करता रहूँगा
तुम्हारे लिए।

अभी तुम भ्रमित हो भ्रमित राह में
छली जा रही हो छलित चाह में
तुम्हें जब कभी नेह का ज्ञान हो
ममता के आँसू की पहचान हो
तब तुम नयन में समाना शुभे!
ये पलकें बिछी हैं, बिछी ही रहेंगी
तुम्हारे लिए।

जिन्हें तुम समझती हो ममता की मूरत
तुम्हें क्या पता कैसी-कैसी हैं सूरत
कोई छद्मवेशी दशानन बने जब
तुम्हारे सुविश्वास को वो छले जब
तब तुम रुँधे स्वर बुलाना शुभे!
रक्षक बना हूँ, बना ही रहूँगा
तुम्हारे लिए।

१०.६.९५

# कब कैसे बीत गए दिन

कब कैसे बीत गए दिन ?
यादों में रीत गए दिन ।

स्नेहिल भुजपाशों से बँधकर कब मुक्त रहे
स्वप्निल विश्वासों की श्वासों से युक्त रहे

वे आशातीत गए दिन
कब कैसे बीत गए दिन ?

अनचाहे, अनदेखे, अनछुए अनोखे थे
प्रियतम थे, प्रिय थे, प्रिय सदन के झरोखे थे

पावन नवनीत गए दिन
कब कैसे बीत गए दिन ?

दूर नहीं रहते थे, पास भी न आते थे
फिर भी जाने-मन को, क्यों इतना भाते थे ?

जीवन संगीत गए दिन
कब कैसे बीत गए दिन ?

लौटकर न आयेगी क्या वो स्वर्णिम बेला ?
जिस समता की ममता में अनन्त क्षण खेला

सुन्दर सुपुनीत गए दिन
कब कैसे बीत गए दिन ?

पल छिन ऐसे बीते, खटरस पीते पीते
समय को न बाँध सके आखिर जीते जीते

हारे हम जीत गए दिन
कब कैसे बीते गए दिन ?

२१.९.९२

# मंज़िल मुझको मिल जायेगी

इस जग का यदि सारा दर्द मुझे मिल जाये
फिर भी मेरी करुणा क्या कम हो पायेगी ?
इस जग से जन्मों का है सम्बन्ध हमारा
मेरी करुणा स्नेह-सरित बन बह जायेगी।
करुणा की अनुभूति हृदय को तब होती है
अश्रु पिरोए गीली आँखें जब रोती हैं
हृदय वल्लकी के स्वर से अनुगुंजित होकर
अभिय-वारि से जन-मानस को नहलायेगी ।
मेरी करुणा तो करुणाधर की माया है
मेरा सघन-निकुंज-सदन इसको भाया है
इसकी शीतल छाया में जो भी आयेगा
अपने आँचल के पहलू में दुलराएगी ।
मुझको तो बस माँ का मनहर रूप सुहाता
पर उस जननी का है सारे जग से नाता
कष्टों से बोझिल इस जग का बोझ उठा लूँ
मानवता की मंज़िल मुझको मिल जायेगी ।

१२.६.८६

# अर्चना बन गई

ज़िन्दगी अर्चना बन गई
काव्य की सर्जना बन गई ।
प्रीति जबसे हुई पावनी
ज़िन्दगी अल्पना बन गई ।।

मन हृदय आत्मा से मिले
शब्द परमात्मा से मिले ।
भावना जब हुई बलवती
ज़िन्दगी साधना बन गई ।।

वर्तिका दीपिका बन गई
साधिका साध्य से मिल गई ।
याचना के अधर जब खुले
ज़िन्दगी प्रार्थना बन गई ।।

एक अपलक, पलक झुक गई
शील की सहचरी रुक गई ।
जब मनोरथ सुफल हो गए
ज़िन्दगी प्रेरणा बन गई ।।

२३.२.९०

# सर्जना के लिए

तिमिर में वर्तिका ले चली अर्चना
अर्चना के लिए, सर्जना के लिए ।
कर लिए गंध, अक्षत सुवासित सुमन
साधिका चाहती साध्य का आगमन
याचिका बन गई, याचना के लिए
अर्चना के लिए, सर्जना के लिए ।
देव निष्ठुर न आए, उषा आ गई
प्रिय उषा की पहल कुछ उसे भा गई
वह तपस्विनि रुकी मंत्रणा के लिए
अर्चना के लिए, सर्जना के लिए ।
बन गई जब उषा की सहेली व्रती
वह यती, दृढ़व्रती पार्वती सी सती
खुश हुए शंभु अभ्यर्चना के लिए
अर्चना के लिए, सर्जना के लिए ।।

२०.१०.८९

# प्रेम-रंग

प्रेम रंग में रंग लो अन्तःकरण तुम
ये सुअवसर फिर न जाने कब मिले ।
मुग्ध-कलिके मधु-छलित जीवन तुम्हारा
पुष्प बनकर फिर न जाने कब खिले ।
मृदुकली ओ ! मृदुलता की मृदु-लता सी
कुंजवन में ये भला कैसी उदासी
क्यों न राधा श्याम का मन बींध दे
यह नयन शर फिर न जाने कब चले ।
इन हरे, नीले, गुलाबी रंग से
अंग रंग जाने से कुछ होता नहीं
यदि तुम्हारा कलुष मन निज दाग को
भावना के सिन्धु में धोता नहीं
श्याम रंग में रंग लो यह चूनरी
दाग इसका फिर न जाने कब धुले ।
प्रिय मिलन की आस का जब भास होगा
परम प्रियतम पर तभी विश्वास होगा
फागुनी रंग में स्वयं रंग जायेगा मन
बन्द होंगे वासना के सिलसिले ।।

१८.३.८६

## कब होगा जीवन में वसंत ?

कब होगा जीवन में वसंत ?
जब तरु-पल्लव पर पिक बयनी
कुछ गीत विरह के गाएगी
सुनकर विरहिन की विरह व्यथा
उर को पीड़ा पहुँचाएगी
ऐसे में शुभ संदेश लिए
पावन समीर आकर कर दे
मृग नयनी के आ रहे कंत
तब होगा जीवन में वसंत ।
जब पुष्पित उपवन में मधुकर
प्रणयातुर प्रणय-प्रलाप करे
मुकुलित कलियों का आलिंगन
विरही मन का संताप हरे
जब शीतल-मन्द-समीर लिए
रजनी सोलह श्रृंगार करे
ऐसे में दूल्हा बने चाँद
बाराती हों तारे अनंत
तब होगा जीवन में वसंत ।

जब शतरंगी चूनर पहने
वासंती मधु-मुस्कान करे
चम्पक, पलाश, जूही, गुलाब
विधु-वदनी का सम्मान करें
पीले सरसों के फूलों से
बसुधा का आँचल महक उठे
ऐसे में प्रमुदित होकर जब
धरती के पग चूमे दिगंत
तब होगा जीवन में वसंत ।।

८.७.८५

## शुभकामना

तुम जहाँ भी रहो मुस्कुराते रहो
स्नेह के सिन्धु में तुम नहाते रहो
बस यही कामना है तुम्हारे लिए
राष्ट्र का दीप बन जगमगाते रहो ।
सफलताएँ तुम्हारे चरण चूम लें
कर्म की ज्योति ऐसी जलाते रहो
छा रहा है चतुर्दिक तिमिर ही तिमिर
रवि-किरण बन अँधेरा हटाते रहो ।
सिक्त-मन से तुम्हारी करें अर्चना
स्नेह मन्दाकिनी तुम बहाते रहो
यश तुम्हारा धरा से गगन तक रहे
बट-अक्षयवट मही पर उगाते रहो ।
हम न निर्धन बनें स्नेह-क्षण के लिए
भावनाओं के मोती लुटाते रहो
देश मृत-प्राण सा हो रहा है सखे !
काव्य संजीवनी तुम पिलाते रहो ।
स्नेह सारा समर्पित तुम्हारे लिए
तुम मिलन की पिपासा बढ़ाते रहो
मीत-बिछुड़न न हो एक पल के लिए
रूठते हम रहें तुम मनाते रहो ।।

२५.१०.८६

## तुम चले छोड़कर

तुम चले छोड़कर साथ मेरा सखे !
पर हृदय तो तुम्हारा मेरे पास है ।
भावना का उदधि है तुम्हारा हृदय
रत्न की कल्पना तो मेरे पास है
इस अतल सिन्धु में हो समाधिस्थ मैं
सिन्धु में बिन्दु का देखता हूँ मिलन
रूप दैहिक हमारे भले हों मगर
दृष्टि तो एक है, हों भले दो नयन
मीत साधक बने तुम, बने ही रहो
साधना की क्षुधा तो मेरे पास है ।
मीत की दूरियाँ तब खटकती नहीं
मीत के पास जब मीत का गीत हो
मीत सा मीत हो, गीत सा गीत हो
गीत में गूँजती प्रीति की रीति हो
प्रीति के देवता तुम स्वयं प्रीति हो
प्रीति की अल्पना तो मेरे पास है ।

देह से हम अलग हो रहे हों भले
भावना से अलग हम न होंगे कभी
दे रहा हूँ वचन जो निभा भी सकूँ
प्रीति तो पावनी हो सकेगी तभी
तुम सुयश का शिखर छू सको मित्रवर !
बस यही कामना तो मेरे पास है ।

२६.४.८७

## ज्योति पर्व

अच्छा तो होगा जब अन्तस में प्रीति पले
जन-जन के अन्तर्तम में जग-मग दीप जले ।

वैभव की चकाचौंध कौंध गई बिजली सी
पर फैलाए बैठी जिज्ञासा तितली सी
सोने की चिड़िया पर पानी का रंग चढ़ा
और नहीं वतन के सोनारों ने वतन छले ।

देशपूत दिशाहीन, राजनीति पथ विहीन
श्वेत वस्त्रधारी पर चेहरे कितने मलीन
संकट में है स्वदेश, असफल पूँजी निवेश
लक्ष्मीपति चाहें तो देश का अनिष्ट टले ।

ज्योति पर्व का संदेश, ज्योतिर्मय रहे देश
माँ भारति के कानन में न कहीं होय क्लेश
उपवन में, मधुवन में, जीवन के निधिवन में
मानव मन के तरु में, देश का भविष्य फले ।।

२५.१०.९२

# आया नव-वर्ष

संदली हथेली के मोहक संस्पर्श
कहते हैं जागो प्रिय, आया नव-वर्ष ।

अंग-अंग पोर-पोर में नई उमंग
श्वासों के परिकम्पन में बसे अनंग
स्नेह-सिक्त अधरों के स्नेहिल उत्कर्ष
कहते हैं जागो प्रिय, आया नव-वर्ष ।

पंखुड़ियों-पंखुड़ियों में नव-उल्लास
मृदु कलियों में है बस खिलने की आस
मधुलोभी मधुकर के मधुरिम सुस्पर्श
कहते हैं जागो, प्रिय आया नव-वर्ष ।

तन-मन वृन्दावन है, जीवन यह काशी
छवि विलोक मुदित हुए, दो नयन उदासी
निद्रा और जागृति के ये उभयोत्कर्ष
कहते हैं जागो प्रिय, आया नव-वर्ष ।।

३१.१२.९५

## आत्मबल

हमने तूफानों से भी टकराना सीखा है
हमने चट्टानों को भी बिखराना सीखा है ।
हर दुर्गम पथ को भी सुगम बनाना सीखा है
हमने ऊसर में भी बीज उगाना सीखा है ।

चाहे विपदाओं का बादल हमपर टूट पड़े
चाहे अम्बर से बिजली ही हमपर छूट पड़े ।
हमने वज्राघात से प्राण बचाना सीखा है
हमने तूफानों से भी टकराना सीखा है ।

चाहे सूरज पूरब से पश्चिम को उग जाए
चाहे सुरसरि की धारा उलटी ही बह जाए ।
हमने मानवता का धर्म निभाना सीखा है
हमने तूफानों से भी टकराना सीखा है ।

चाहे चन्दन-वन में मणिधर विष ही बो जाए
चाहे नन्दन-वन की हरियाली ही खो जाए
हमने मरुथल में भी सरित बहाना सीखा है
हमने तूफानों से भी टकराना सीखा है ।।

३.३.८८

## अभिशाप देकर क्या करोगे ?

तुम मुझे संताप देकर क्या करोगे ?

जब प्रभंजन प्रबल राह न रोक पाए
शब्द वेधी वाण जिसे न बींध पाए
दर्द में भी जो खुशी के गीत गाए
साधना को ही रहा उर में बसाए

शूल पथपर जो निरन्तर बढ़ रहा हो
तुम उसे परिताप देकर क्या करोगे ?

अग्नि में ही जो सदा जलता रहा हो
मृत्यु की ही गोद में पलता रहा हो
युग स्वयं जिसको सदा छलता रहा हो
जो प्रलय में भी सदा हँसता रहा हो

काल भी पथ को न जिसके रोक पाया
उसे प्रलय-प्रलाप देकर क्या करोगे ?

आदि शक्ति स्वयं अकिंचन पुत्र का जब
सतत मार्ग प्रशस्त करती जा रही हो
डूबते मझधार में पतवार बनकर
वत्स को जो पार करती जा रही हो

मिल चुका अमरत्व का वरदान जिसको
तुम उसे अभिशाप देकर क्या करोगे ?

१८.६.८५

## अमृत-कलश बन जियो

आप जब तक जियो आदमी बन जियो
कुछ बरस ही जियो सौ बरस बन जियो ।
इस धरा की ये माटी है पावन बहुत
इसको माथे का चन्दन बना लीजिए
ये करेगी तुम्हारे विजय का तिलक
इसकी रक्षा का पहले वचन दीजिए
सिर कटाना पड़े तो कटा देना पर
सिर कटाने से पहले सुयश बन जियो ।
ये हिमालय, ये सागर, ये गंगो जमुन,
सब खड़ें हैं तुम्हारे लिये ले सगुन
भारती का न मस्तक झुके वीरवर
हो उठे रिपु प्रकम्पित समुद्घोष सुन
खुद को मिटना पड़े तो मिटा दो मगर
शौर्य का एक स्वर्णिम दिवस बन जियो ।
तुम अजर हो, अमर हो, समर के सुभट
देश की आन हो, देश की शान हो,
हो अहं से परे, गर्व से हो भरे,
इसलिए तुम हिमालय की पहचान हो
प्राण, तन-मन वतन के लिए जो दिये
उन शहीदों का अमृत-कलश बन जियो ।।

९.३.९२

# अरे ! यह कैसा भारत देश ?

किसी दुखिया का है संदेश
अरे ! यह कैसा भारत देश ?
जहाँ मानवता है संत्रस्त
दुखी दुख सहने का अभ्यस्त
प्रशासक, शासक, मंत्री मस्त
न करता कोई मार्ग प्रशस्त
बिहँसते देख दुखी का क्लेश ।
अरे ! यह कैसा भारत देश ?
पड़ा फुटपाथ पे जो लाचार
शब्द कहना चाहे दो चार
रुक रहे प्राण-तत्त्व संचार
नहीं जिससा कोई उपचार
बचे जीवन के कुछ क्षण शेष ।
अरे ! यह कैसा भारत देश ?
जहाँ ममता के स्नेहिल पुंज
सुवासित करते थे मधु-कुंज
हुईं कलियाँ मधुवन की लुंज
मधुप से कलुषित हुआ निकुंज
भ्रमर गुंजन में भी आवेश ।
अरे ! यह कैसा भारत देश ?

भुला सकता हूँ क्या यह दृश्य
पलक झपते जो हुआ अदृश्य
नियति-नटिनी का देख कुदृश्य
तिमिर में सोया हिन्द भविष्य
प्रकाशित कैसे हो "करुणेश" ?
अरे ! यह कैसा भारत देश ?

३.१०.८५

# आदमी

आदमी-आदमी का लहू पी रहा
आदमी से ही संत्रस्त है आदमी ।
आदमी-आदमी का हनन कर रहा
आदमी से ही बोझिल हुआ आदमी ।
एक लाचार इनसान, इनसान के- तकाज़ा
सामने बेबसी का जनाज़ा लिये
आँसुओं में भिगोए सजल दो नयन जनाज़ा
तप्त बाहों में सुत का तकाज़ा लिये
कह रहा बिन कफ़न ये हमारा ललन
जा रहा छोड़कर अपना प्यारा वतन
मानवी वेदना से व्यथित यदि न हो
आदमी फिर कहाँ रह गया आदमी ।
कोई हिन्दू कहे, कोई मुस्लिम कहे,
कोई सिक्ख कह रहा, कोई ईसाई है
सच अगर पूछिये धर्म को बेचने के लिए
ये सभी एक व्यवसाई हैं
कोई मज़हब सिखाता नहीं द्वेष है
एक सद्भावना मानवी वेष है
यदि गले से गले भी न तुम मिल सके
आदमी क्या कहेगा तुम्हे आदमी ।

जब तलक ऊँच औ नीच में भेद है
जब तलक जाति औ धर्म में भेद है
जब तलक एकता की न हो भावना
एक इनसान-इनसान में भेद है
तार से तार को जोड़ना है कठिन
पर असम्भव नहीं यह समझ लीजिए
आदमी के लिए, यदि जिये आदमी
आदमी के लिए, यदि मरे आदमी
आदमी-आदमी को जो पहचान ले
आदमी बन सकेगा वही आदमी ।।

२६.४.८६

# हमने अख़बार पढ़े

सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े
कहीं रेल टकराई, कहीं पर विमान जले
कहीं किसी अबला के बच्चों के कटे गले
लुटी अस्मिता के समाचार पढ़े ।
सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े ।।

कहीं किसी रावण ने सीता का हरण किया
किसी अर्थलोभी ने कपिला का वरण किया
हमने ये दोनों व्यभिचार पढ़े ।
सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े ।।

किसी राजनेता ने शकुनी की चाल चली
मंदिर, मस्ज़िद, मण्डल से चिनगारी निकली
कूटनीति के नर संहार पढ़े ।
सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े ।।

कहीं किसी हर्षद ने देश में दलाली की
राजनीति शासक ने राजकोष खाली की
कर्जों के बढ़ते अम्बार पढ़े ।
सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े ।।

किसी देश द्रोही ने फतवा तक कर डाला
न्याय और शासन को पैर से कुचल डाला
पग-पग पर असफल सरकार पढ़े ।
सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े ।।

यह सब कुछ अब मेरे भारत में होता है
झूठ यहाँ पलता है सत्य यहाँ रोता है
राजनीति के नव-आचार पढ़े ।
सुबह-सुबह हमने अख़बार पढ़े ।।

५.६.९३

## मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है

मेरा जीवन छन्दों जैसा है
मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है ।

खाता हूँ कन्दमूल फल
सोता हूँ गगन के तले
महलों में रहते हैं जो
उनसे हम सौ गुने भले
मेरा जीवन ऋषियों जैसा है
मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है ।

कलकल कलरव नित करना
बन गई हमारी आदत
उनसे अपना क्या रिश्ता
प्रकृति से जिन्हें है नफ़रत
मेरा जीवन झरनों जैसा है
मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है ।

नपी तुली मर्यादा में
रहना सीखा है हमने
उनसे तो अच्छे हैं हम,
जिनको पाला है, भ्रम ने
मेरा जीवन हंसों जैसा है
मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है ।

कहने को हूँ फकीर पर
दिल का तो बादशाह हूँ
गुदड़ी में छिपा लाल मैं
भावों का शहंशाह हूँ
मेरा जीवन कवियों जैसा है
मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है ।

जो कुछ है पास हमारे
सबको बाँटा करता हूँ
खाली झोली होने पर
प्रभु से माँगा करता हूँ
पास नहीं रहता दो पैसा है
मैं जैसा हूँ न कोई वैसा है ।।

३०.५.९३

## हम भी चरणामृत बन जाएँ

कुण्ठाओं को मन से त्यागें
मानवता को गले लगाएँ
कर्मेंद्रिय को साधन समझें
ज्ञानेन्द्रिय को साध्य बनाएँ ।

संघर्षों से लड़ना सीखें
कर्म निरन्तर करना सीखें
पथ यदि हो कंटकाकीर्ण तो
लौह पुरुष बन हम दिखलाएँ ।

सबके प्रति बन्धुत्व भावना
यही हमारी रहे कामना
आत्मबोध की करें साधना
राग द्वेष को दूर भगाएँ ।

औरों के दुख को पहचानें
निज को हम ईश्वरमय जानें
तिमिराच्छादित आत्माओं को
ब्रह्मज्ञान की ज्योति दिखाएँ ।

हम सत् चित् आनन्द रूप हैं
हम परमात्मा के स्वरूप हैं
सबके अभ्यंतर में बसकर
श्याम तत्त्व का बोध कराएँ

अमरम् हम हैं, मधुरम् हम हैं
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् हम हैं
उस चेतन की पकड़ उँगलियाँ
खुद नाचें और उसे नचाएँ ।।

सागर बन हम पाँव पखारें
हिमगिरि बन हम मुकुट संवारें
माँ भारति के श्री चरणों का
हम भी चरणामृत बन जाएँ ।।

३.९.९४

# इतना सुख मत देना

इतना सुख मत देना मुझको
दुःख के बैन न मैं सुन पाऊँ।
तेरी ममता के उपवन में
फूलों सा महका करता हूँ
आँचल के साए में पलकर
बालक सा चहका करता हूँ
इतना अधिक दुलार न देना
निज को भी पहचान न पाऊँ।
वैसे तेरी करुणा में निज
करुण-कहानी ही रहती है
तेरे पुलकित दो नयनों में
झर-झर निर्झर सी बहती है
इतना अधिक प्रवाह न देना
स्नेह-सरित में मैं बह जाऊँ।।

२७.१०.८४

## बेटी धीरे-धीरे बढ़

बेटी धीरे-धीरे बढ़
बिछलन की सीढ़ी पर बेटी हौले हौले चढ़ ।
बेटी धीरे-धीरे बढ़ ।।
बाबुल की अँगनइया छोटी मइया का आँचल
पूनम की चाँदनिया जैसी गति तेरी अविरल
मेरे लघु आकास के पथ पर मंथर गति से कढ़ ।
बेटी धीरे-धीरे बढ़ ।।
जिस गुलाब की खुशबू है तू उसमें हैं काँटे
तेरे पाटल अधरों पर हों कभी न सन्नाटे
अपनी मधु-मुस्कानों से जग की तश्वीरें मढ़ ।
बेटी धीरे-धीरे बढ़ ।।
बी.ए., एम.ए., पी.एच.डी. की चाह नहीं हमको
आई.ए.एस. की चहिए तनख्वाह नहीं मुझको
मानव मन की भाव-पुस्तिका आखर-आखर पढ़ ।
बेटी धीरे-धीरे बढ़ ।।
एक दिन पूर्ण करेगी तू ही मेरी अभिलाषा
तुमने क्योंकि पढ़ी है ढाई आखर की भाषा
तेरा भाव लोक बन जाये इस भाषा का गढ़ ।
बेटी धीरे-धीरे बढ़ ।।

९.४.९८

# बिन लिखी पाती

बाँच ली हमने नयन की बिन लिखी पाती
व्यथा की अनदिखी पाती ।

आँसुओं से नयन भीगे वेदना से तन
कल्पना के पंख चोटिल हुए, बोझिल, मन
जाँच ली हमने नयन की पीर उत्पाती
भावना स्तब्ध रह जाती ।

मूक अधरों की कहानी कौन सुनता है
वीण के टूटे स्वरों से कौन जुड़ता है
आँक ली हमने कली है क्यों झुलस जाती ?
नियति से लड़ नहीं पाती ।

जन्म से ही दुःख-सुख की रच गई रेखा
है यही यदि सत्य तो सब कुछ है अनदेखा
जान ली हमने मनुज की कर्म है थाती
विधाता की लिखी पाती ।।

२२.१२.९६

# बेटियाँ

सावन की घटा बनके जब आती हैं बेटियाँ
जीवन के मरुस्थल को भिगाती हैं बेटियाँ ।

डोली में बैठ जिस घड़ी रोती हैं बिलखकर
पाषाण को भी मोम बनाती हैं बेटियाँ ।

माँ-बाप, भाई-बहिन के अनमोल प्यार के
आँसू का मोल रोके चुकाती हैं बेटियाँ ।

सखियों सहेलियों की जुदाई कबूल कर
एक अज़नबी को अपना बनाती हैं बेटियाँ ।

सास और ससुर जेठ-जेठानी हो या देवर
हर एक से सम्बन्ध निभाती हैं बेटियाँ ।

शर्मो हया औ लाज के गहने को पहन कर
दोनों कुलों की लाज बचाती हैं बेटियाँ ।

माँ की थीं जो ममता उसी ममता के रूप में
ममता का अर्थ बोध कराती हैं बेटियाँ ।

जिस दिन से जन्म लेती हैं उस दिन से मृत्यु तक
रह-रहके सबको प्यार लुटाती हैं बेटियाँ ।।

३.६.९६

# क्या पढ़ूँ ?

गीत पढ़ूँ, छन्द पढ़ूँ या पढ़ूँ ग़ज़ल
आपही बढ़ाएँगे हमारा मनोबल ।

एक नंगा हास हमें आता नहीं है
द्रोपदी का चीर हरण भाता नहीं है
क्योंकि मेरे नयनों में है गंगाजल
गीत पढ़ूँ, छन्द पढ़ूँ या पढ़ूँ ग़ज़ल ।

कविता तो वो है जो कि मन को छुए
सूर, तुलसी भी इसी जग में हुए
उनके ही स्नेह का हूँ मैं भी लघु फल
गीत पढ़ूँ, छन्द पढ़ूँ या पढ़ूँ ग़ज़ल ।

कविता का जो भी उपहास हुआ है
हास्य व्यंग में क्या यही खास हुआ है ?
कवि क्या है जो कि क़रे कविता से छल
गीत पढ़ूँ, छन्द पढ़ूँ या पढ़ूँ ग़ज़ल ।

कुछ गीतकारों ने भी बेची है कलम
मोह में लिफाफे के हुए हैं बेशरम
ढहा नहीं मेरी भावनाओं का महल
गीत पढ़ूँ, छन्द पढ़ूँ या पढ़ूँ ग़ज़ल ।

३.५.९७

## दृढ़-संकल्प

मुझे न यश की चाह न अपयश का डर है
मेरा स्वाभिमान. इन सबसे ऊपर है ।
मस्तक नहीं झुका है, नहीं झुकेगा
बढ़कर कदम न रुका, न कभी रुकेगा
मिला मुझे शूलों का नेह निरन्तर है
मुझे न यश की चाह न अपयश का डर है ।
हम शूलों को फूल बना सकते हैं
हर पथ को अनुकूल बना सकते हैं
मेरा दृढ़-संकल्प ओम् का अक्षर है
मुझे न यश की चाह न अपयश का डर है ।
जन्म-मृत्यु का बन्धन क्या मालूम नहीं
जीवन का निष्पंदन क्या मालूम नहीं
कर्मयोग का चिंतन ही अमोघ शर है
मुझे न यश की चाह न अपयश का डर है ।
मुझे किसी के सम्बल की है चाह नहीं
जग रूठे रूठे इसकी परवाह नहीं
आदिशक्ति को अर्पित अपना हर स्वर है
मुझे न यश की चाह न अपयश का डर है ।
जीवन पाना है तो मृत्यु से लड़ना होगा
लक्ष्य प्राप्त करना है तो दुःख सहना होगा
पंचतत्त्व निर्मित शरीर यह नश्वर है
मुझे न यश की चाह न अपयश का डर है ।

७.९.८५

## कबिरा की बानी की तरह

मेरा जीवन तो है बहते हुए पानी की तरह
लोग पढ़ते हैं मुझे रोज कहानी की तरह ।

मेरे जज़बात की गहराइयों में ये दुनिया
डूब जाती है किसी प्रेम दिवानी की तरह ।

मैने चाँद और सितारों को रोशनी दी है
शुभ्र आकाश में रहता हूँ मैं ज्ञानी की तरह ।

मैं वो संकल्प हूँ जिसका कोई विकल्प नहीं
क्षीर सागर में मैं रहता हूँ मथानी की तरह ।

सूर, तुलसी की तरह, मीर, ग़ालिब की तरह
हर एक दिल में रहूँ कबिरा की बानी की तरह ।

८.१२.९७

## नहीं अच्छा लगता है

स्नेह रहित आवास नहीं अच्छा लगता है
प्रिय का मुझे प्रवास नहीं अच्छा लगता है ।

शबनम की बूँदें क्या प्यास बुझा पाएँगी ?
क्षणिक सुखों का भास नहीं अच्छा लगता है ।

अब तक मन को सघन-तमिस्रा में भरमाया
यह यांत्रिकी प्रकाश नहीं अच्छा लगता है ।

चिर प्रकाश को पा लेने की अभिलाषा में
पूनम का आकाश नहीं अच्छा लगता है ।

पढ़ न सके जो योगी मानव मन की भाषा
उसका योगाभ्यास नहीं अच्छा लगता है ।

सच पूछो तो अपनी आत्मा ही योगी है
शिव विहीन कैलास नहीं अच्छा लगता है ।

अब तो पूर्ण समर्पण ही रह गया शेष है
दर्शन बिन संन्यास नहीं अच्छा लगता है ।।

३०.६.८६

## शब्द शब्द निराले होंगे

जिनके होठों पे हँसी पाँव में छाले होंगे
उनके गीतों के शब्द-शब्द निराले होंगे ।

सूर, तुलसी ने भी अमरत्व को पाने से प्रथम
न जाने कितने गरल के पिये प्याले होंगे ।

भावनाओं की मथानी से उदधि को मथकर
कल्पनाओं ने कई रत्न निकाले होंगे ।

जहाँ से गीत, ग़ज़ल, छन्द का उद्‌गम होगा
वहीं मन्दिर, वहीं मस्ज़िद औ शिवाले होंगे ।

कोई मक्का में रहे या रहे अयोध्या में
राम रहमान को सब जानने वाले होंगे ।

चाहे पूरब हो या पश्चिम हो या उत्तर दक्षिण
हर जगह एक ही सूरज के उजाले होंगे ।

ज़िन्दगी वो है जो कि मृत्यु को लगा ले गले
हम तो जिसके हैं फिर उसके ही हवाले होंगे ।।

१९.१२.९५

## नीराजना बन जायेंगे

क्या पता था आपकी हम भावना बन जायेंगे ?
सहनकर अवमानना स्वर-साधना बन जायेंगे ।

सद्‌गुणों की मूर्ति हैं छेनी चलाते जाइये
एक दिन हम आपकी आराधना बन जायेंगे ।

स्वर्ण मृग का रूप दे मुझको, निशाना सांधिये
चिर प्रतीक्षित मुक्ति की संभावना बन जायेंगे ।

हिरणकश्यप की तरह प्रह्लाद को मत मारिये
आप मारे जायेंगे हम प्रार्थना बन जायेंगे ।

जब कभी भी आपकी उर-ग्रंथियाँ खुल जायेंगी
हम उसी दिन आपकी शुभ-कामना बन जायेंगे ।

सूर, तुलसी या कि मीरा के सदृश हो जाइये
आपकी सौगन्ध हम नीराजना बन जायेंगे ।।

१२.१.९५

## दर्पण

रूप दर्पण है कि दर्पण ही रूप है अपना
कौन है सत्य और कौन सलोना सपना ?

रूप दर्पण सा नहीं रूप सा दर्पण भी नहीं
फिर भी हर रूप के अनुरूप है दर्पण अपना ।

थे अलौकिक तो हमी थे समाज का दर्पण
अब तो लौकिक भी नहीं रह गया दर्पण अपना ।

एक धृतराष्ट्र था जो जन्म से ही था अन्धा
अब तो धृतराष्ट्र ही लगने लगा दर्पण अपना ।

अब भी संजय की दिव्य-दृष्टि अगर मिल जाये
रूप दर्पण सा हो, हो रूप सा दर्पण अपना ।

सच तो यह है स्वरूप ही अनूप दर्पण है
भ्रम यही है कि हमने देखा सलोना सपना ।।

१५.४.९४

## रूप का प्रतिरूप हूँ

मैं तुम्हारे रूप का प्रतिरूप हूँ
किरण तुम हो मैं सुनहली धूप हूँ ।

तुम तिमिर को दूर करने की प्रभा हो
मैं तुम्हारी ज्योति का प्रारूप हूँ ।

स्नेह के प्यासे अधर मुझमें डुबो लो
मैं तुम्हारी चिर-तृषा का कूप हूँ ।

तुम सृजन हो, सृष्टि हो, या स्वयं सर्जक
मैं तुम्हारी प्रकृति के अनुरूप हूँ ।

यदि चिरस्मरणीय जीवन है तुम्हारा
मैं तुम्हारी कीर्ति का नव-रूप हूँ ।।

१५.७.८६

# महाप्रयाण से प्रथम

आइना टूट न जाये कोई उपाय करो
हमसे रब रूठ न जाये कोई उपाय करो ।

ये वो दर्पण है जिसमें है युगों की परछाईं
साथ ये छूट न जाये कोई उपाय करो ।

माँ तुम्हारे सिवा रक्षक नहीं कोई जग में
दीप ये बुझने न पाये कोई उपाय करो ।

मेट सकती हो तुम्ही कर्म की लकीरों को
हादसा होने न पाये कोई उपाय करो ।

आज करुणामयी "करुणेश" की बिनती सुन लो
चेतना लौट के आये कोई उपाय करो ।।

९.९.८७

## महाप्रयाण के बाद

धन्य थी ये अवनि धन्य है वो गगन
इस अवनि के चरण को गगन का नमन ।

जो अवनि पर स्वयं थी अवनि रूप सी
थी कहीं छाँव सी थी कहीं धूप सी ।

हर पथिक को दिया जिसने नवल-स्फुरण
धन्य थी ये अवनि धन्य है वो गगन ।

वेदना को जो थी सहचरी मानती
साधिका-साध्य को थी स्वयं जानती ।

राधिका का हुआ था पुनः अवतरण
धन्य थी ये अवनि धन्य है वो गगन ।

जिसकी करुणा में सागर सी गहराई थी
जिसके संकल्प में रवि की अरुणाई थी ।

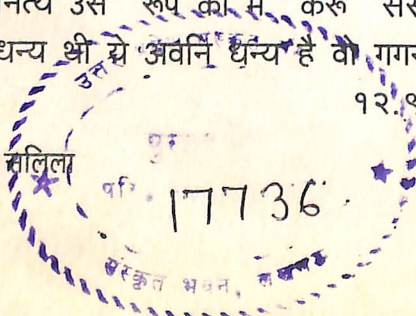
मिल गई ज्योति में ज्योति की वो किरण
धन्य थी ये अवनि धन्य है वो गगन ।

शुभ्र आँचल से पोछे सजल-नयन जो
बोलती थी सदा प्रेम के बयन जो ।

नित्य उस रूप का मैं करूँ संस्तवन
धन्य थी ये अवनि धन्य है वो गगन ।।

१२.९.८७





# शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ७ | ९ | भी | श्री |
| ९ | ६ | अक्षरसः | अक्षरशः |
| ९ | १५ | पल्लवि | पल्लवित |
| १२ | १,३ | संसोधन | संशोधन |
| १३ | १४ | विद्या | विधा |
| १४ | ३ | प्रवह्यमान | प्रवहमान |
| १४ | १३ | ओर | और |
| २४ | २ | मरुस्थल | मरुथल |
| ३७ | १७,१८ | हैं | है |
| ४५ | ८ | नमन | नयन |
| ५४ | ६ | उमको | उनको |
| ६९ | ३ | नैवेध | नैवेद्य |
| ७१ | १ | हैं | है |
| ९१ | ६ | जनाज़ा | तकाज़ा |
| ९१ | ८ | तकाज़ा | जनाज़ा |
| ९५ | ९ | करता | करना |

–: ० :–

# अन्तःसलिला





प्रद्युम्नानाथ तिवारी "करुणेश"